चन्दामामा
माँ-बच्चों का मासिक पत्र
6
M.T.V. Acharya

Photo by A. L. Syed

पुरस्कृत परिचयोक्ति

श्रम-प्रतीक

प्रेषक
सीताराम गाजीपुरिया - चन्दौसी

बचपन से ही दांत साफ़ करने का अभ्यास कराना माता-पिता का प्रमुख कर्तव्य होना चाहिये। बच्चों के छोटी अवस्था का यह अभ्यास दिनचर्या का विधन बन जाता है व थोड़ी सावधानी रखने से जीवन भर दांत के व्याधियों से छुटकारा मिल जाता है—

नीम टूथ पेष्ट

ट्रेड “कैलकेमिको” मार्क

नियमित व्यवहार करने से दांत मजबूत सुन्दर और चमकीले होते है तथा हर प्रकार के दन्तरोगों से सुरक्षित रखता है.

दि कैलकटा केमिकल कं. लि. ३५, पंडितिया रोड, कलकत्ता-२९.

ताजी फल-संयुक्त
मिठाइयाँ जिनमें सारे-प्राकृतिक विटामिन सुरक्षित हैं। अन्य प्राप्तव्य - क्रीम टाफी, बार्ली-चीनी से प्रस्तुत लौलीज, पेपरमिंट लाजेन्ज तथा सैकड़ों अन्य बनावट।
MORTON
SWEETS
MORTON
भारत के एकमात्र शीत-ताप नियंत्रित मिठाई कारखाने में बनी अनुपम मिठाइयाँ।

बिड़ला
कटेली चम्पा
केश तेल
अनुपम गन्ध
एवं केश शोभा
केलिये

वीर-बच्चा
बच्चों की ताकत के लिये
अनुपम टानिक
VEERBACHHA
बिड़ला लेबोरेटरीज़, कलकत्ता-२०

रावलगांव

डोंगरे का बालामृत

चन्दामामा
संचालक :
' चक्रपाणी '
गणेश-चतुर्थी कहो या चौथ-चन्दा। यह
त्योहार असल में चन्दामामा के पाठकों
का ही। अब और बड़े-बड़े त्योहार आ रहे हैं
जैसे दशहरा और दीपावली। चन्दामामा के
पाठकों ने पहले गणेशजी के नाम पर खूब मोदक
उड़ाए थे, खूब गुल्ली-डण्डा खेले थे, अब 'दशहरे'
के खेल-तमाशे देखेंगे। कोई सारे बदन को अनेक
रंगों से भर कर और पूंछ लगा कर जङ्गली शेर बन
जाएगा और लड़के उसके पीछे तालियाँ बजाते
दौड़ेंगे। ऐसे समय 'चन्दामामा' का यह अङ्क उन
के हाथ में पहुँचेगा और उन्हें पंच पांडवों के वीर
भाई 'भीम' की याद दिलाएगा।
वर्ष 5 : अक्टूबर 1953 : अङ्क 2

सराफ़ और गधा

किसी समय था एक गाँव में रहता एक गधा;
दिखने में वह भोला-भाला, सच में था चालाक बड़ा।
मालिक उसका एक सराफ़ था, बूढ़ा और कमजोर,
बड़ा ही मक्खीचूस था वह, और साथ में लालच-खोर।

एक दिन उसकी पीठ पे चढ़के बूढ़ा वह कन्जूस,
चला गाँव से बाहर अपने, कहीं वह मक्खीचूस।
देख के सुन्दर और हरा एक खेत वह उसने सोचा,
उतर गया वह पीठ से उसकी, और गधे से बोला।

"महँगी घास है इस गाँव में, कठिन है लेना सुन ले,
यही है अच्छा, यहीं पे चरले घास तू जितनी चाहे।
छोड़ दिया यह कह कर उसने यहीं गधे को चरने,
लेट गया एक पेड़ के नीचे, खुद आराम वह करने।

मनमानी जब आज़ादी की मिली, उसे वरदान,
भूल गया सब आगा पीछा, फिर तो वह नादान।
पाँव के नीचे जब उसके वह सुन्दर खेत है आया,
रौंद ही डाला फिर तो उसने पलट दी उसकी काया।

नरम नरम जब बालें उसने बड़ी पक्की देखीं,
आधी आधी खा कर फिर तो मज़े से उसने फेंकीं।
खेत में सारे उछल कूद कर ऐसी धूम मचाई,
खुशी से फिर वह दौड़ा भागा, लोटने लोट लगाई।

* * *

'मालिक होने के नाते तुम डरते हो अब उससे,
सच, तो रक्षा करो री अपनी, भाग जाओ जल्दी से।'
नहीं विचार है मेरे मन में कहीं किसी दुश्मन का,
मुझको मेरे हाल पे छोड़ो, मुझे पेट है भरना।

पढ़ा लिखा मैं नहीं हूँ कुछ भी और न हूँ मैं ज्ञानी,
कहता हूँ पर सुनो कहावत, तुम से एक पुरानी।
जानवरों के लिए हैं, दुश्मन मालिक ही खुद उनके,
डण्डा धरा उधर मालिक पे, लगा घास वह चरने।

लोट पोट जब गधा चुका तो लगा वह फिर मस्ताने,
अपनी ही मस्ती की धुन में, लगा वह गाना गाने।
गूँजी जब आवाज वह उसकी, सब जङ्गल थर्राया,
जिसको सुन कर बूढ़े का, एक दुश्मन दौड़ा आया।

दुश्मन को जब देखा उसने, कहा गधे से आओ,
'भाग चलें हम चलो यहाँ से, देर न जरा लगाओ।'
गधा समझ न पाया कुछ भी, मालिक क्या है कहता,
बोला, क्यों क्या बोझ है उसका तुमसे भी कुछ ज्यादा !

'मेहरबानी करके आओ भी !' गधे से बोला बनिया,
'लौट चलें हम अपने घर को, यही है सब से अच्छा।'
गधा यह बोला—'जाओ, दुश्मन तुम्हारा हो क्यों मेरा !
मुझे किसी से डर काहे का, मैं तो ठहरा एक गधा।
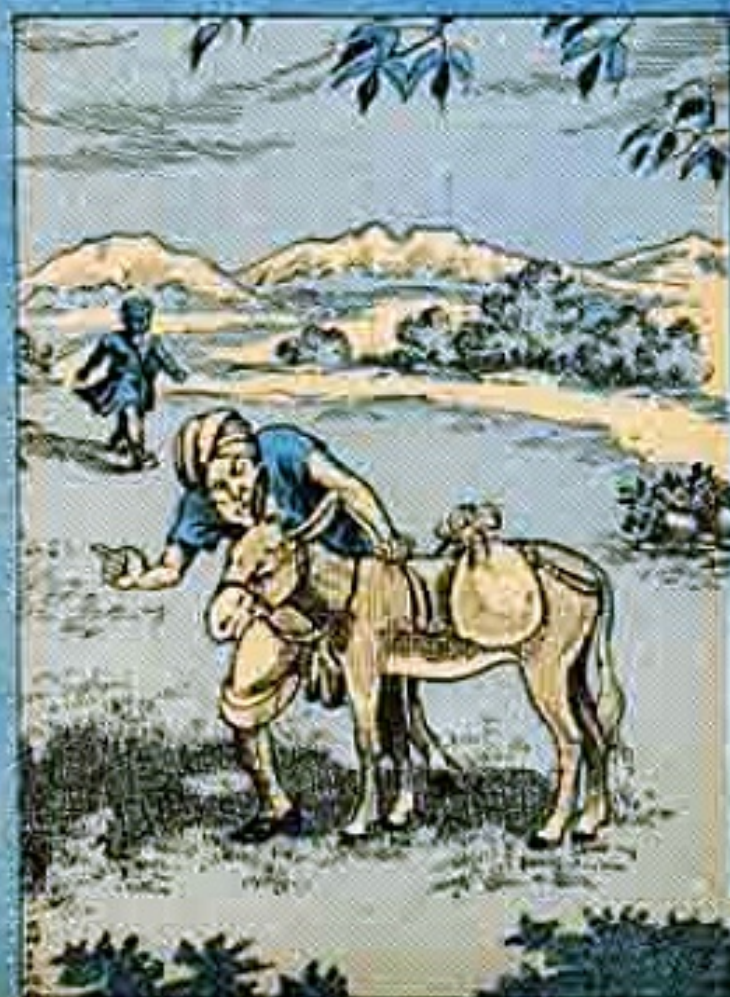
मुख-चित्र

काले-नागों से कटवाए जाने पर भी भीम ने कोई परवाह न की। जब वह बच कर निकल आया तब दुर्योधन वगैरह मन-ही-मन कट कर रह गए।

'इसे कैसे खतम करें—!' यह चिन्ता उन्हें सालने लगी। उसके बाद कौरव-दल के नायक दुर्योधन, शकुनी, कर्ण आदि मिल कर सोचने लग गए।

उन्हें मालूम था कि भीम बड़ा पेटू है। लड्डू उसे बहुत पसंद हैं। इसलिए उन लोगों ने जहरीले लड्डू तैयार करवाए। इन लड्डुओं के साथ-साथ कुछ और भी बढ़िया से बढ़िया पकवान बनवाए गए और एक बड़े भोज की तैयारी हुई।

खेलने के बाद गङ्गा तट पर भोज शुरू हुआ। जहरीले लड्डू खाते हुए भीम को कौरव-दल वालों ने देखा—उसमें कोई परिवर्तन नजर नहीं आ रहा था! उसने खूब डट कर लड्डू खाए और फिर घूमने निकल पड़ा! इसके बाद जाकर सो रहा।

सोते हुए भीम को उन लोगों ने मोटे रस्से से कस कर बाँध डाला और उठा कर गङ्गा में फेंक दिया। जहाँ उसे फेंका था वहाँ नदी के नीचे, त्रिशूल की तरह नोकदार लोहे की छड़ें गाड़ दी गई थीं।

यों फेंके जाने पर भीम पाताल-लोक में पहुँच गया। तब जाकर उसकी नींद खुली। उसके मुँह से निकल पड़ा—'अरे, यह क्या! शरीर ठण्डा मालूम पड़ता है!'

नाग-लोक के वासियों ने भीम का बड़ा आदर-सत्कार किया। 'भीम पञ्च-पाण्डवों में एक है—!' यह सुन कर उन्हें बड़ी खुशी हुई। फिर उन्होंने उसे एक सिद्ध—रस पिलाया, जिससे भीम के शरीर में हजार हाथियों का बल आ गया।

इसके बाद नाग-लोक से वह एक नई ज्योति लेकर घर लौटा। वहाँ उसके सब लोग, उसके लिए बहुत ही घबरा रहे थे। भीम के मुख से सारी कहानी सुन कर सब लोगों ने अचरज से कहा—'भगवान जो कुछ करता है सब अच्छे के लिए ही करता है! जरूरत है संकट आने पर धैर्य धरने की; और भगवान को याद करने की!—फिर आदमी कभी पछता नहीं सकता!!'

मित्र द्रोह

ब्रह्मदत्त जब काशी का राजा था, तब एक बार भगवान-बोधिसत्व बन्दर के वेश में पैदा हुए और हिमालय-पहाड़ के एक पेड़ पर रहने लगे।

जन्मे तो थे वे वानर-वंश में, फिर भी आदमी में पाए-जाने वाले सभी अच्छे गुण, सुन्दर चाल-चलन उस बन्दर में दीख पड़ते थे। इसलिए उस जंगल में रहने वाले सभी जीव-जन्तु अपने दुख-सुख सुनाने, और उनके दूर करने का उपाय जानने के लिए, उस भले बन्दर के पास आया करते थे।

दर-असल उस भले बन्दर की बातें सुन कर, जंगल के जानवरों ने अपना क्रूर स्वभाव ही नहीं छोड़ा, बल्कि साधु बन्दर के शिष्य होकर मुक्ति भी पाली थी। इतना ही नहीं, वे लोग बड़े सवेरे उठ कर गंगा में स्नान कर आते थे, और मीठे-मीठे फल तोड़ कर उसे गुरु-दक्षिणा-रूप में भेंट धरते थे।

इस तरह जब वह भला बन्दर जंगली जीवों के बीच रह रहा था, तब एक दिन उस के कानों में एक करुण चीख आकर पहुँची।

सुनते ही वह बन्दर उठा और—'लो अभी आया!' कहता जहाँ से वह शब्द आ रहा था उस ओर दौड़ पड़ा।

देखता क्या है कि एक पेड़ के नीचे एक गंदा गड्ढा है। वह बहुत गहरा था। उसमें से दम घोटने वाली बदबू निकल रही थी। और उसमें पड़ा हुआ एक आदमी हाथ-पैर मारता हुआ चिल्ला रहा था।

उसकी दुरवस्था देख कर बन्दर का दिल पिघल गया: आँखों में आँसू छल-छला आए। जरा भी आगा-पीछा किए बगैर वह उस नरक-कुण्ड में कूद पड़ा। फिर उस

जगदीशचन्द्र

आदमी को अपनी पीठ पर उठाया, और एक छलाँग में कुन्ड के ऊपर आ गया।

इतना ही नहीं, उस भले वानर ने उस आदमी को एक चट्टान पर सुला दिया। और खाने के लिए मीठे-मीठे फल लाकर उसके सामने रख दिए। फिर वह जङ्गल में चला गया, और वहाँ से जड़ी-बूटी खोज लाया, और पत्थर पर घिस-घास कर उसके घाव पर मरहम पट्टी कर दी। इस प्रकार सेवा सुश्रुषा होने के बाद उस आदमी की पीड़ा कम हुई और वह गहरी-नींद में जा पड़ा।

कुछ देर के बाद वह सोकर उठा। देखा कि उस के पास ही एक बन्दर बैठा हुआ है। बन्दर को देख कर उस आदमी के मन में कई तरह के भाव उठे।

जाने उसने क्या सोच कर कहा— 'अरे भाई तू मुझे बहुत कष्ट से उठा लाया था। इस से तू बहुत थक गया होगा, जाकर तू भी थोड़ी देर आराम कर ले।'

उस आदमी की बात पर विश्वास करके थका-माँदा वह बन्दर आँखें मूँद कर सोने लगा। बन्दर के सोते ही उस आदमी के मन में एक दुर्बुद्धि पैदा हुई— 'इस बन्दर को क्यों न जान से मार डालूँ और देखूँ कि इसका कलेजा कैसा होता है!

कैसा दुष्ट था वह! बन्दर ने उसकी जान बचाई थी। लेकिन वह कैसा एहसान-फरामोश निकला कि जरा भी दया-माया नहीं। बस, उसने एक बड़ा सा पत्थर उठा लिया, और सोए हुए उस बन्दर पर पटक दिया।

लेकिन उसका निशाना चूक गया। वह पत्थर कुछ दूर पर गिरा। इसी से बन्दर को लगा नहीं। और उसके गिरने की आवाज से उसकी नींद टूट गई। बन्दर को जागा हुआ देख कर उस दुष्ट के दिल

पर पत्थर सा पड़ गया।—'सोचा था क्या—और हुआ क्या!' डर के मारे उसके प्राण सूख गए।

जाग कर इस बन्दर ने उस आदमी के मुँह की ओर देखा, फिर अपने पास पड़े हुए पत्थर की ओर नजर फेरी। किसी सबूत की कोई जरूरत न रह गई थी। उसकी सारी दुष्टता इससे समझ में आ गई।

लेकिन बन्दर इससे जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसने सोचा—'यह तो ऐसे ही अधमरा हो गया है। इसे फिर से मारना बुद्धिमानी का काम नहीं होगा।' यों सोचता वह बन्दर कुछ न कह कर सिर्फ उसकी ओर देखता रह गया। लेकिन वह सरल-दृष्टि ही उसे आग की तरह जला रही थी।

फिर वानर के वेश में रहने वाले भगवान बोधिसत्व ने उसे यों उपदेश दिया—'वत्स! तू डर मत, मैं तेरी कोई बुराई नहीं करूँगा। लेकिन तू जो दुष्टता करने जा रहा था, इसकी भनक अगर यहाँ के किसी जीव-जन्तु के कानों में पड़ी, तो तू यहाँ एक क्षण भी खड़ा नहीं रह सकता। मेरे साथ चल, उन के आने से पहले ही इस जंगल से मैं तुझे सही-सलामत पार कर दूँ।' यों कह कर उस बन्दर ने उसे जंगल से पार कर दिया, और दोनों ने अपनी अपनी राह ली। वह आदमी जंगल पार कर जब अपने घर पहुँचा तो, कुछ ही दिन के बाद उसके पापों ने उसे खूब सताया। उसके अपने बच्चों ने ही उसे घर से निकाल दिया। अपने-पराए सब उससे अलग हो गए। प्राण-प्रिय-मित्र भी उससे कतरा कर आने जाने लगे।
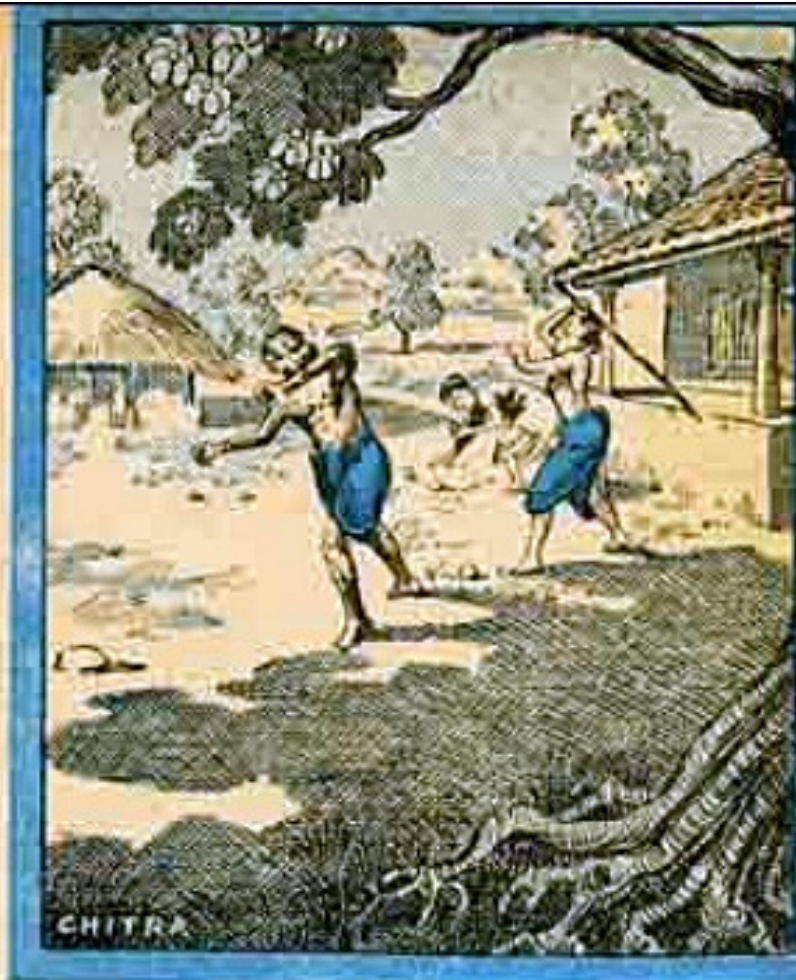
फिर तो उस उस दुष्ट के लिए गाँव छोड़ कर जाने की नौबत आ गई। जाते-जाते वह एक घोर जंगल में पहुँचा और पापों का प्रायश्चित करने लगा। मित्र-द्रोह का ऐसा ही फल भोगना पड़ता है!

गिरगिट

दुनिया में बहुत से ऐसे लोग पाए जाते हैं जो अपनी बात जल्दी बदल देते हैं। ऐसे आदमी रङ्ग बदलने वाले कहे जाते हैं। यह मुहावरा गिरगिट को देख कर ही मशहूर हुआ होगा। जानवर रङ्ग-बिरंगे होते हैं। लेकिन यह तो निश्चय के साथ कहा जा सकता है, कि एक गिरगिट ही अपना रङ्ग बदल सकता है।

विधाता ने इस जीव को ऐसी शक्ति क्यों दी? यह कहा जा सकता है कि परिस्थितियों के बदलने पर, अपनी रक्षा के अनुकूल कोई भी जानवर अपने में कोई भी परिवर्तन कर लेता है। सम्भव है, इस रक्षण के लिए ही गिरगिट अपना रङ्ग बदलता हो।

गिरगिट छिपकली-जाति में ही गिना जाता है। किसी किसी भाषा में छिपकली और गिरगिट पर कई तरह की कहानियाँ भी कही जाती हैं। इस के चमड़े में छेद ही छेद होते हैं, और वे पास पास होते हैं। उनमें छोटे-छोटे अद्भुत अणु भी पाए जाते हैं। इसी कारण कभी कभी इसका सारा शरीर सफेद दीख पड़ता है। कुछ छेदों में तेल से चिकने पदार्थ होते हैं। वे हमें पीले रङ्ग के दीख पड़ते हैं। कुछ में हरे रङ्ग की कुछ चीजें पाई जाती हैं। यह सब हमें उन रङ्गों के साथ दीख पड़ते हैं। इसलिए गिरगिट जब अपने शरीर को सिकोड़ता और फुलाता है, तो हमें अनेक रङ्ग फैलते दीख पड़ते हैं।

इन रङ्गों का बदलना न बदलना गिरगिट की इच्छा-अनिच्छा पर निर्भर है। फिर बाहर की परिस्थितियों और सर्दी-गरमी के कारण भी वह रङ्ग बदल सकता है।
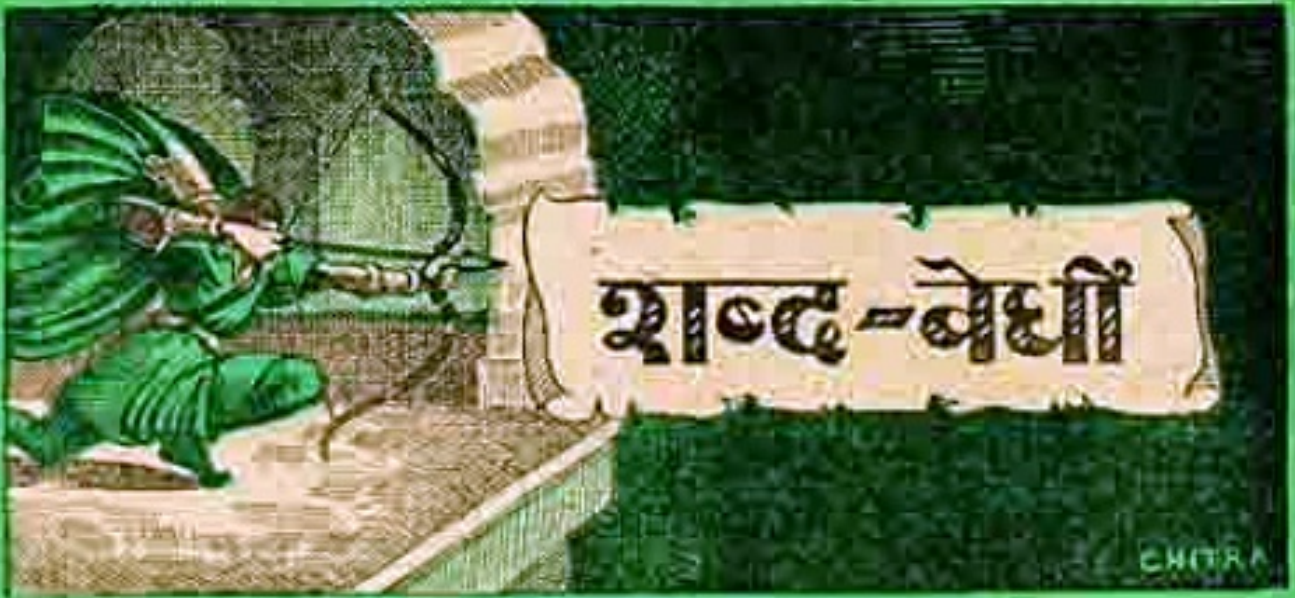
[गिरि-दुर्ग पहुँचने के बाद विजय ने तुरत अपने पिता की मृत्यु का रहस्य जानने की कोशिश की। आखिर उसके प्राणों पर आ पहुँची। करुणा को यह बात मालूम थी। इसीलिए उसने उसे पहले ही सावधान कर दिया था। विजयवर्मा करुणा को वहीं छोड़ देता है और किसी तरह जान बचा कर निकल आता है। [उसके बाद पढ़िए—]

विजयवर्मा भीमवर्मा के हाथ से बच कर निकल भागा। उसके भी चार महीने हो गए। इन तीन-चार महीनों में ही विजय-लक्ष्मी बीसलपुर और कोसलपुर राज्यों के बीच चार-पांच बार एक-दूसरे के हाथों में अदलती-बदलती रही। अभी कोसलपुर वालों का ही हाथ ऊँचा था।

इसीलिए भीमवर्मा बेलगाम घोड़े की तरह सरपट भाग रहा था। उसने कोसलपुर के अधीन रहने वाले कुछ सरदारों के साथ मिल कर नर्मदा नदी के तीरस्थ देवलपुर में अपना अड्डा जमाया।

उसी देवलपुर में, गांव के बाहर एक टूटी धर्मशाला में, बैठे दस-बारह आदमी बातें कर रहे थे। अभी रात हो आई थी।

इतने में वहां एक दूत आया और उनके बीच बैठे एक युवक से बोला—'विजय भीमवर्मा अभी-अभी चार सैनिकों के साथ कहीं बाहर जा रहा है।'

यह सुनते ही विजयवर्मा घबराकर तुरत उठा और अपने चार-पांच अनुचरों के साथ उस दूत के पीछे-पीछे चला गया।

वह दूत उन्हें नर्मदा नदी के तीर से ही

ले जा रहा था। कुछ दूर जाने पर, मशाल की रोशनी में चलते हुए, एक छोटा दल उन्हें अपने सामने दीख पड़ा।

इन लोगों ने सोचा कि यह जरूर भीमवर्मा का ही दल होगा। ऐसा सोच कर ये लोग कुछ रुके और देखने लगे कि वे कहाँ जाते हैं। कुछ दूर जाने के बाद वह आगे-जाने वाला दल नदी-तट की सघन झाड़ियों के पास ठहर गया। विजयवर्मा भी अपने साथियों के साथ कुछ पास पहुँच कर झाड़ियों की आड़ में रुका और देखने लगा कि वे अब क्या करते हैं। कुछ देर के बाद, उन्हें झाड़ियों की दूसरी तरफ से एक और दल आता हुआ दिखाई दिया। दोनों दलों के अगुओं का पहले परिचय हुआ, फिर वे कुछ बातें करने लगे।

विजय जहाँ खड़ा था, वहाँ से यद्यपि उनकी बातें साफ-साफ नहीं सुनाई पड़ती थी, फिर भी—'करुणा सब तरह से लायक लड़की है', 'शब्द-वेधी.... खुले आम सुविधा नहीं'—आदि कुछ बातें उसे सुनाई दे गईं। कुछ देर के बाद उनकी बातें बन्द हो गईं। भीमवर्मा अपने दल के साथ पीछे मुड़ा और अपने निवास-स्थान की ओर लौट पड़ा। विजयवर्मा ने उसका पीछा किया।

भीमवर्मा ने नर्मदा-नदी के तट पर बने एक पुराने मकान में अपना डेरा डाल दिया था। उस मकान के तीन ओर ऊँची चहर-दीवारी बनी थी। एक ओर तेज धार वाली नर्मदा बह रही थी, जो चहर-दीवारी से भी कहीं अच्छी तरह, उसकी रक्षा कर रही थी। यह मकान विजयवर्मा के ध्यान में इस के पहले ही आ गया था। लेकिन इसके अन्दर जाने का कोई उपाय न देख कर वह चुप रह गया था।

उनकी बातों से विजयवर्मा ने सोचा—शायद करुणा भी इसी मकान में लाई गई

होगी और जबर्दस्ती विवाह करने की तैयारी होने जा रही होगी। इसलिए समय रहते ही उस मकान पर छापा मार कर करुणा को छुड़ा लेने का संकल्प विजय ने कर लिया।

इसलिए भीमवर्मा और उसके अनुचर जब उस मकान के अन्दर चले गए, तब विजय ने उसके चारों ओर घूम कर छापा मारने का उपाय ढूँढा। तीनों तरफ पहरे का कड़ा प्रबन्ध था और उस पर छापा मारना संभव नहीं था। इसलिए उसने नदी की तरफ से ही घुसने का निश्चय किया। यह निश्चय होते ही वह अपने साथियों के साथ धर्मशाला की ओर लौट पड़ा।

लेकिन वह वहाँ से थोड़ी दूर भी नहीं गया होगा कि कुछ लोगों ने उसे रोका। जिस से विजय को विश्वास हो गया कि ये जरूर भीमवर्मा के ही आदमी हैं। बस, तलवार निकाल कर, उस अँधेरे में जान की परवाह किए बिना ही, वह उन लोगों पर टूट पड़ा। इस तरह कुछ देर मुठ-भेड़ होने के बाद 'तुम कौन!'—तो— 'तुम कौन!'— का शोर शुरू हुआ और तब जाकर लोगों को अपनी-अपनी भूल मालूम हुई।

तब विजयवर्मा को मालूम हुआ कि जिन के साथ वह लड़ रहा था, वह भीमवर्मा या उसके आदमी नहीं, बल्कि चन्द्र-दुर्ग के मालिक और उसके आदमी हैं, जिस ने पाल-पोस कर करुणा को बड़ा बनाया था। आखिर ये दोनों-के-दोनों भीमवर्मा के जानी दुश्मन निकले। दूसरे दिन सवेरे मिल कर सब बातों पर विचार करने और कोई उपाय ढूँढ़ने का निश्चय करके दोनों दल अपनी-अपनी राह चले गए।

दूसरे दिन सवेरे ही विजय और चन्द्र-दुर्गाधिपति नर्मदा-नदी के तट पर मिले और बातचीत शुरू हुई। दोनों ही भीमवर्मा के
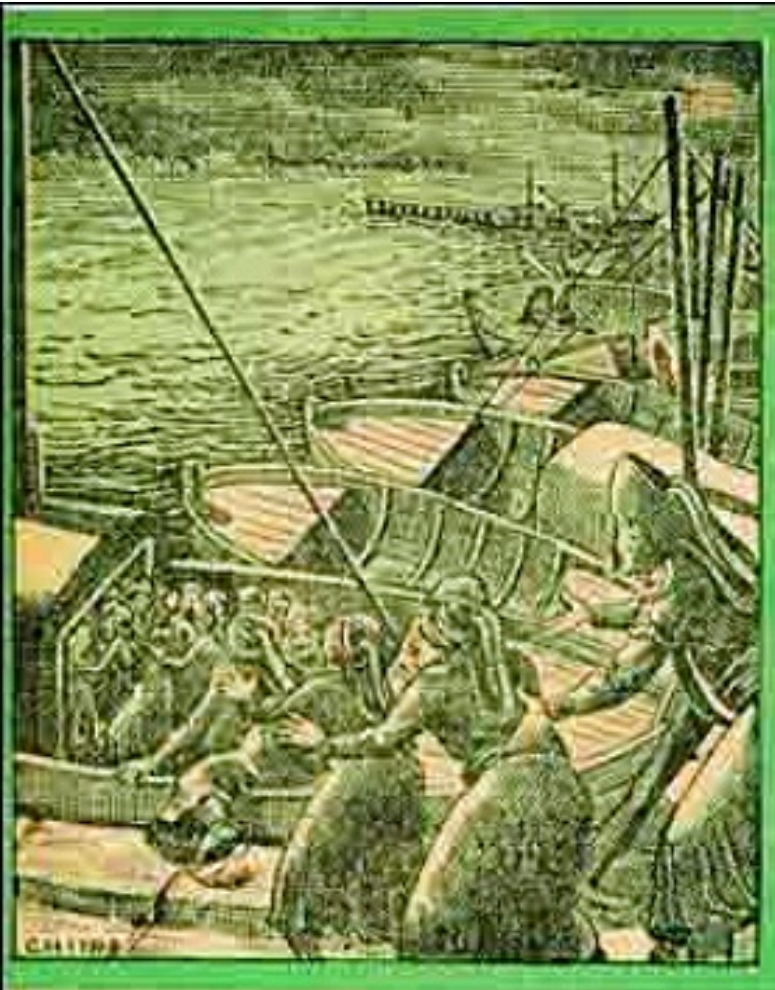
जानी दुश्मन थे, इसलिए मित्रता स्थापित करने में कोई देर न लगी। चन्द्र-दुर्ग के मालिक को विजय के ऊपर बड़ा ही प्रेम और विश्वास पैदा हो गया। दोनों ने करुणा की रक्षा करने और उसी रात को नदी की तरफ से भीमवर्मा पर धावा बोलने का निश्चय कर लिया। साथ ही साथ चन्द्रदुर्ग के मालिक ने विजय को यह भी वचन दिया कि विजय के साथ करुणा की शादी कर देने में उसे कोई आपत्ति नहीं है।

विजय के अनुचरों में नाथूसिंह नाम का एक अधेड़ आदमी भी था। उस नाथूसिंह को नदी-नावों का बड़ा अच्छा अनुभव था। डेरे पर लौटने के बाद विजय ने नाथूसिंह से कहा—'भाई नाथूसिंह, क्या आज की रात कहीं से एक बड़ी नाव उड़ा ला सकते हो? एक जरूरी काम आ पड़ा है।' नाथूसिंह ने जवाब दिया—'यह कौन-सी बड़ी बात है? घाट की सब नावें हमारी ही तो हैं!'

घाट पर बहुत-सी नावें लगी थीं। उन सबों में एक नाव कुछ बड़ी थी और वह इनके बहुत काम की थी। उसी नाव को मन में रख कर नाथूसिंह ने विजय से वह बात कही थी। अँधेरा होते ही चन्द्र-दुर्ग का मालिक अपने बीस-पचीस आदमियों के साथ वहाँ पहुँच गया। विजय तो वहाँ पहले से अपने बीस-पचीस आदमियों के साथ तैयार बैठा था।

सबसे पहले पाँच-छह आदमी घाट पर गए और चुपचाप उस नाव को ठेल कर किनारे पर लाए और उस पर चढ़ गए। फिर नाव पर सोए दो रखवालों के मुँह में कपड़ा ठूँस दिया और हाथ-पैर बाँध कर उन्हें कहीं दूर पर डाल दिया। उसके बाद नाथूसिंह ने पतवार पकड़ी और नदी की धार में नाव को तीर की तरह उड़ा ले चला।

आसमान में बादल घिर आए थे। नाथूसिंह ने आकाश की ओर देख कर कहा—'लक्षण कुछ अच्छे नहीं दीख रहे हैं।' चन्द्र-दुर्ग के स्वामी ने भी उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा—'हां, लक्षणों से तो तूफ़ान आने की संभावना दीखती है। साइत कुछ अच्छी नहीं मालूम होती है।'

'देखना है, कि अब क्या-क्या गुल खिलते हैं!'—विजय ने कहा और उसने अपने मन में सोचा—'तूफ़ान क्या, अगर भूकम्प भी आ जाय, तब भी आज की रात वह करुणा को छुड़ाए बिना नहीं रहेगा!'

पल-पल में अँधेरा बढ़ता जा रहा था। जब तक नाव भीमवर्मा के निवास-स्थान के करीब पहुंची, तब तक घोरान्धकार छा गया। आँखें फाड़-फाड़ कर देखने पर भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। हवा भी बिल्कुल रुक गई थी। विजय ने आतुरता से कहा—'आ गए हम!' वह छटपटा रहा था—कब नाव किनारे लगे और कब वह उस में से कूद पड़े!

किसी तरह नाव उस मकान के पास किनारे पर पहुंच गई। सब से पहले विजय तट पर कूद पड़ा। फिर उसके पीछे और भी कई लोग कूदे। विजय ने मुड़कर कहा—'बाकी लोग सब नाव में ही रहो। पहले हम लोग देख आते हैं कि हालत कैसी है और किस तरह काम करना है।' यों चन्द्र-दुर्ग के मालिक के साथ बाकी लोग नाव में ही रह गए।

ढेर के ढेर बादल आकाश में जमा होने लगे। और तारे भी गायब हो गए। सहसा आँधी चल पड़ी। विजयवर्मा अपने साथियों के साथ पग-पग पर रुकता हुआ आगे बढ़ने लगा। उसे विश्वास था कि मकान के पीछे कोई पहरेदार नहीं होगा। इसी से वह साहस के साथ चला जा रहा था।

इतने में उसके एक साथी को ठोकर लगी। ठोकर खाकर वह ढाल की ओर लुढ़का। बस, मकान के ऊपर से सनसनाता एक तीर आया और विजय के एक साथी की देह में चुभ गया। जब विजय ने यह देखा तो आदेश दिया—'पीछे हटो!' इतने में तीरों की वर्षा होने लगी और विजय के आदमी पीछे की ओर भाग खड़े हुए।

इतने में वर्षा और हवा एक-साथ वेग से शुरू हुई। उस तूफ़ान के हाहाकार में भागने वालों और पीछा करने वालों का कोलाहल मिल कर एक बड़ा होहल्ला मचने लगा।

कुछ भी क्यों न हो, विजयवर्मा और उसके सहचर किनारे पर नाव के पास पहुँच गए। लेकिन नाव का कहीं पता न था! हवा की तेज़ी और लहरों के आघात के कारण वह किनारे से बहुत दूर चली गई थी। उसे किनारे लगाना नाथूसिंह के लिए मुश्किल हो रहा था। और वह अपनी पूरी शक्ति से उसे किनारे पर लाने की कोशिश कर रहा था।

पीछे से दुश्मन बढ़े आ रहे थे। मूसलाधार पानी गिर रहा था। हवा की तेज़ी ज़मीन पर पैर नहीं रखने देती थी। बीच-बीच में बिजली कौंध कर दुश्मन को उनका पता बता जाती थी।

सोचने-विचारने का मौका नहीं था।

विजयवर्मा और उसके साथी नदी में कूद पड़े और नाव की तरफ़ बढ़ने लगे।

दुश्मन किनारे पर आकर खड़े हो गए और तैरने वालों के साथ-साथ नाव वालों पर भी बाणों की वर्षा करने लगे। नदी में तैरते हुए जिन्हें तीर लगे, वे जाने कहाँ बह गए। कुछ लोग नाव पर चढ़ते हुए तीर खाकर गिरे और धार में बह गए। नाव पर के कुछ लोग भी घायल हो गए। उनकी रक्षा का कोई उपाय नहीं था। वे

भी साहस के साथ बाण बरसाने लगे। लेकिन दुश्मनों के छिपने के लिए तो उधर चट्टानें थीं और थीं सघन झाड़ियाँ!

इन लोगों का धावा यों बुरी तरह विफल हो गया। आखिर किसी तरह जान बचा कर निकल जाने के लिए वे लोग मनौती मानने और भगवान को गोहराने लगे। तूफ़ान के कारण सूखे पत्ते की तरह नाव थपेड़े खा रही थी। और अब डूबी, तब डूबी! की हालत में पहुँच गई थी। अब नाव पर भी चीख-पुकार मचने लगी।

विजयवर्मा ने हाँफते हुए कहा—'नाथ, नाव किसी तरह उस पार लगा दो!' लेकिन उस भयङ्कर तूफ़ान में नाव को पार लगाना क्या हँसी-खेल था?

इतने में एक तीर आकर चन्द्र-दुर्ग के मालिक को लगा। घायल होकर वह गिर पड़ा। लोग उसे उठा कर एक ओर ले गए। घाव गहरा था। जान जाने का भी डर था। चिन्ता में पड़ा विजय उसके पास आकर खड़ा हो गया।

'बाबू, तुम किस पक्ष में हो? कोसलपुर वालों के पक्ष में हो या बीसलपुर वालों के पक्ष में?'—चन्द्र-दुर्ग के मालिक ने पूछा।

विजय ने जवाब दिया—'भीमवर्मा कोसलपुर वाला है। वह मेरा और चण्डीदास का दुश्मन है। इसलिए आप हमको भी बीसलपुर वाले ही समझ सकते हैं।'

घायल गढ़पति फिर यों कहने लगा—'तो फिर सुनो: सच पूछो तो मैं करुणा के लिए इस नगर में नहीं आया था। करुणा कहाँ है, यह भी मुझे मालूम नहीं था! मैं आया था दुश्मनोंकी शक्ति की थाह लेने! वह काम कुछ हो गया है। लेकिन मैं बचूँगा या नहीं पहले तो इसी में मुझे शक है। फिर भी तुम्हें मैं एक आदमी का नाम

बताए देता हूँ। अगर मैं रम गया तो तुम उस आदमी के पास आकर सब बातें कहना। वह बीसलपुरके अधीश्वर से तुम्हारा परिचय करा देगा। कौन कहे कि तुम्हारा भाग्य कैसा है ?'

विजय ने पूछा—'फिर करुणा की हालत क्या होगी ?' यह सुन कर गढ़पति ने कहा—'उसके बारे में मैं अब क्या कर सकता हूँ ? जो कुछ हो सकता था, आज कर दिया। अब जो करना हो, तुम्हीं को करना पड़ेगा !' इस पर विजय बोला—'आप घबराइए नहीं। हम लोग अब दुश्मनों के निशाने से दूर निकल आए हैं। थोड़ी ही देर में किनारे से लग जाएँगे। आपका घाव भी अच्छा हो जाएगा।'

पीड़ा से कराहते हुए गढ़पति ने कहा—'चाहे जो हो, मेरी चिन्ता अब मिट गई।'

सचमुच थोड़ी ही देर में वे लोग किनारे पर पहुँच गए। तभी पूरब में पौ फटने लग गई थी। अपने साथियों के साथ टूटे हृदय से विजयवर्मा नाव से उतरा। चन्द्र-दुर्ग के घायल स्वामी को उसके आदमी उठा कर डेरे पर ले गए।

करुणा को छुड़ाने का वह प्रयत्न यों निष्फल हो गया। लेकिन इससे एक फायदा यह हुआ कि विजयवर्मा को चन्द्र-दुर्ग के स्वामी का स्नेह प्राप्त हो गया। इसीलिए विजय ने दृढ़ संकल्प किया—'अब चाहे जो हो, करुणा को छुड़ाने के लिए मुझे किसी की सहायता की जरूरत नहीं !' मैं अब अपनी ताकत पर ही भरोसा करूँगा !'

[अभी और है।]

जाकड़ा

इङ्गलिस्तान में एक विचित्र तरह का पक्षी होता है। देखने में वह कौए की तरह होता है। किसी भी बोली की नकल करने में वह अद्भुत चतुर होता है। अभ्यास होने पर ठीक आदमी की तरह बातें कर सकता है। इसका नाम है जाकड़ा। चमकदार चीजें देख कर वह मुग्ध हो जाता है और उसकी खोज में वह परेशान हो जाता है। इसलिए वहां के आदमी सिक्कों को उस पक्षी की नजर से बचाए रखते हैं। क्योंकि चमकदार किसी सिक्के पर उसकी दृष्टि पड़ी कि वह उसे उठा ले जाता है। अनेक स्थानों पर यह देखा गया कि जाकड़े के घोंसले में चमकदार सिक्के जमा हैं। चमकीली चीजों को चुराते रहने के कारण लोग बारहां भ्रम में पड़ जाते हैं और एक-दूसरे पर संदेह भी करने लग जाते हैं। पढ़ने वालों के पास से यह चश्मे भी उठा ले जाता है।

और एक खतरनाक बात है! आग की ज्वाला से उड़ते अंगारों को भी वह उठा लेता है और सूखी घासों की ढेरी या फूस के छप्परों पर डाल देता है। इस से अक्सर आग लगती है और अनेक घर-बार जल कर खाक हो जाते हैं।

जाकड़ा बहुत ही सहन-शील तथा साहसी होता है। घोंसला बनाने के लिए छोटे-छोटे तिनके वह जमा करता है और बड़ी कारीगरी से अपना घर बनाता है। यह पक्षी छोटी-छोटी पहाड़ियों में, दर्रों में, टूटी-फूटी दीवारों में और पेड़ों के खोखलों में अधिकतर अपना घोंसला बनाता है। एक विचित्र बात वह और करता है! अपने घोंसले के लिए यह भेड़ों पर भी टूटता है और उनके बदन से ऊन नोंच ले जाता है!

भालू की सेज

नेपाल देश का राजा धर्मसिंधु बड़ा ही परोपकारी था। वह बड़ा त्यागी भी था। वेश बदल कर दूर-दूर तक पैदल घूमने का उसे बड़ा शौक था।

एक बार धर्मसिंधु यों वेश बदल कर घूमता-घामता पहाड़ी प्रदेश में जा पहुँचा। और कुछ दूर जाने पर उसे एक गहरा गड्ढा मिला। उसके बाद उसे कहीं कोई रास्ता नहीं दीख पड़ा।

वहीं खड़ा-खड़ा धर्मसिंधु सोच ही रहा था कि उस गड्ढे की बगल से एक आजानुबाहु आकर उसके सामने खड़ा हो गया। वह सफेद कपड़े पहने था और हाथ में मजबूत लाठी लिए था। खूब बलवान, सुन्दर और वाक्-चतुर जान पड़ता था।

साधारण वेश में दीख पड़ने वाला वह बड़ा आदमी धर्मसिंधु के सामने आकर बड़े प्यार से कहने लगा—'वत्स, थके-मांदे जान पड़ते हो! कौन हो? कहाँ से आ रहे हो? कहाँ जाओगे?—आओ, वत्स—मेरे साथ चले आओ! इसी तरह न जाने कितने लोग मौके-बे-मौके सफ़र करते रहते हैं! ऐसे बेचारों को रात में जगह न दूँ, तो उनकी क्या हालत हो?—आओ, आओ—बेफ़िक्र मेरे साथ चले आओ!'

धर्मसिंधु ने अपने सफ़र की बात उस से कही। सब-कुछ सुन कर उसने कहा—'अरे, बाबू! रास्ता भूल कर बहुत दूर आ गए हो! ऐसे समय में जङ्गल-पहाड़ को लाँघ कर जाना किसके बूते की बात है! लेकिन चिन्ता क्या है? चल कर मेरे साथ भोजन करो। आराम का बिछौना दूँगा। उस पर सुख की नींद सो जाना भला। सवेरा होते ही अपनी राह चले जाना!'

राम प्रकाश

यों एक भला आदमी जब स्वागत कर रहा हो, तब इन्कार करना मूर्खता का काम होगा—यह सोच कर धर्मसिंधु उसके पीछे-पीछे चला गया।

यों दोनों जब पहाड़ पर चल रहे थे, तब नीचे गड्ढे में से कोई ध्वनि सुनाई पड़ी। वह आवाज थी व्यापारियों के एक झुण्ड की। वे लोग गधों पर सामान लाद कर आ रहे थे। उनकी आवाज कानों में पड़ते ही उस भले आदमी ने धर्मसिन्धु से कहा—'अभी आया।'—और उनके पास चला गया।

उनके पास जाकर उसने बड़े ही प्रेम से कहा—'भाइयो, इतनी रात गए यह सफर कैसा! आओ, मेरे साथ चले आओ। मेरे घर में कुछ मुँह जुठाकर सो रहना और सवेरे अपनी राह चले जाना।....आज बड़ा ही शुभ दिन है। बड़ा ही पुण्य काल है। कितने ही अतिथियों की सेवा करने का अवसर मुझे मिला है!'

वह भला आदमी जब व्यापारियों से यों बातें कर रहा था, उसी समय धर्मसिंधु को वहाँ एक बूढ़ा दीख पड़ा। वह लकड़ी का गट्ठर उठाने में बे-हाल हो रहा था। उसकी मदद करने के इरादे से धर्मसिंधु

उसके पास गया। धर्मसिंधु को देख कर उस बूढ़े ने कुशल-क्षेम पूछा।

धर्मसिन्धु ने अपनी राम-कहानी उसे कह सुनाई। फिर कहा—'दादा, अभी-अभी एक दयालु पुरुष मिले थे और बड़े प्यार से आज रात अपने यहाँ रहने को बुला रहे थे।' यह बात सुन कर बूढ़े ने सिर झुका लिया और फिर एक लम्बी साँस छोड़ी।

'अरे रे, तुम्हें माया-जाल में फँसा लिया है उसने। तुम्हारे ऐसे भोले-भाले आदमी को यों फँसते देख कर मेरा हृदय दर्द करने लगता है। तुम जिसे दयालु और भला

आदमी समझ रहे हो, असल में वह भारी बदमाश और धूर्त है, याद रखना। 'उसने जिस सुखद सेज की बात कही है, वह सेज नहीं—माया-जाल है।'—कह कर उसने फिर से दीर्घ साँस छोड़ी।

धर्मसिन्धु को इस से संतोष नहीं हुआ। उसने आतुरता से पूछा—'उस धूर्त के बारे में कुछ और साफ़-साफ़ कहो। यह सुन कर बूढ़े ने यों कहना शुरू किया—

'भाई, वह तो एक राक्षस है। नाम है उसका धूर्तकेतु। मन-माने सोना तैयार करने की लालसा से उसने 'असुर शक्ति' नामक एक देवी की अराधना की। उसकी भक्ति-भावना को देख कर वह 'असुर शक्ति' उसके सामने प्रत्यक्ष हुई।

'केतु, तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर आई हूँ। अपनी इच्छा पूरी करना चाहते हो, तो देखो उस कोने में एक पलङ्ग पड़ा है। उसे ले जाओ। उसका नाम है 'भालू की सेज'। यह भालू के रोमों से बना हुआ महिमामय पलङ्ग है। अगर ठीक इस के बराबर वाले की बलि जिस दिन तुम मुझे दे दोगे, उस दिन तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाएगी।'—ऐसा कह कर वह देवी अदृश्य हो गई।

धूर्तकेतु खुश होकर वह पलङ्ग यहाँ ले आया और यह मकान बनवा कर यहाँ रहने लगा। इस गड्ढे के पास ताक में लगा रहता है और आने-जाने वाले राहगीरों को मेहमान वाजी का लोभ दे कर उन्हें फँसाया करता है। जो उसकी बातों में फँस जाते हैं, उन्हें ले जाकर वह उस पलङ्ग पर सुलाता है। मगर सोने वाले की लम्बाई पलङ्ग से बड़ी हुई तो उनके घुटनों को बाँध-छान कर छोटा बनाने की कोशिश करता है। और जो पलङ्ग से छोटे पड़ जाते हैं,

उन्हें खींच-तान कर वह बराबर बनाना चाहता है। इस प्रकार अनेक आदमी उसके हाथों अकथनीय कष्ट उठा रहे हैं। पलङ्ग के ठीक बराबर एक मैं ही था,....कह कर वह रुक गया।

यह देख कर धर्मसिन्धु बोला—'दादा, फिर बलि होने से तुम कैसे बच गए?' इस पर बूढ़ा यों कहने लगा—

'बाबू, बहुत दिन पहले मैं इसी तरह चलता-चलता यहाँ आ पहुँचा। धूर्तकेतु बड़ी आव-भगत के साथ मुझे अपने मकान में ले गया। बढ़िया भोजन दिया। फिर उस पलङ्ग पर आराम से सोने की बात कह कर खुद बाहर चला गया। मैं मजे में सो रहा। मेरी लम्बाई उस पलङ्ग से एक हाथ ज्यादा थी। यह देख कर मैं अचरज में पड़ गया। इस से मुझे नींद नहीं आई। तब मैंने क्या किया कि पैताने की ओर तकिया डाल कर और सिरहाने की ओर पैर फैला कर सो गया। बस, मेरी लम्बाई और पलङ्ग की लम्बाई बराबर हो गई। यों मुझे पलङ्ग का रहस्य मालूम हो गया। नींद न आने पर भी आँखें बन्द किए मैं यों ही पड़ा रहा।

आधी रात के वक्त धूर्तकेतु आया और देखा कि मैं पलङ्ग के ठीक बराबर हूँ। इतने दिनों के बाद उसे बलि के लायक आदमी मिल गया यह सोच कर वह खुशी से उछल पड़ा। उस दिन से वह मुझे बड़ी मेहरबानी के साथ रखने लगा। फिर बलि देने की शुभ-घड़ी उसने ठीक की। यह बात उसके नौकर से मुझे पहले ही मालूम हो गई थी। बलि देने के पहले आधी रात को आकर उसने मुझे फिर एक बार देखा। उस समय मैं पहली बार की तरह साधारण ढङ्ग से सोया हुआ था। देखने से मैं एक हाथ लम्बा जान पड़ा। यह देख कर धूर्तकेतु

बना कर रखने लगा। जितना भी काम वह लेना चाहे, मैं करता हूँ। जितना भी पानी भरवाना चाहे, भर देता हूँ। जितना भी लकड़ी ढुलवाना चाहे, ढो देता हूँ। पर वह रहस्य नहीं बताता हूँ। और आज तक बलि देने लायक कोई दूसरा आदमी उसे नहीं मिला है।'

इतने में व्यापारियों को साथ लिए धूर्तकेतु के आने की आहट सुनाई पड़ी। यह देख कर बूढ़े ने धीरे से धर्मसिंधु के कानों में कुछ कह दिया। धर्मसिंधु खुशी से उछल पड़ा।

उस दिन धूर्तकेतु के जाल में जितने लोग फँसे थे, उन सबों में धर्मसिंधु ही सुन्दर और लम्बे-चौड़े कद का था। इसलिए धूर्तकेतु ने धर्मसिंधु को खूब बढ़िया खाना खिलाया और बड़े आदर से ले जाकर उसे पलङ्ग पर सुला दिया। धर्मसिंधु जैसे कुछ भी नहीं जानता हो, भोलेपन के साथ पलङ्ग पर जाकर उलटा सो गया!

आधी-रात को धूर्तकेतु ने आकर देखा तो धर्मसिंधु पलङ्ग के ठीक बराबर था। इस खुशी में वह उन व्यापारियों की बात ही भूल गया। उस दिन से वह धर्मसिंधु पर ही ध्यान केन्द्रित करके उसका अनेक तरह से

घबरा उठा। उसे कुछ भी नहीं सूझा। पिछली रात को तो वह पलङ्ग के बिलकुल बराबर था। और आज इतना बड़ा कैसे हो गया! उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया।

'उतावला होकर वह पलङ्ग तो ले आया था, पर उसका रहस्य उसे कुछ भी मालूम नहीं था। न तो इसने कुछ पूछ-ताछ की, न उस देवी ने ही उसे कुछ बताया। अब वह मुझ से उसका रहस्य पूछने लगा। अनेक कष्ट दिए उसने मुझे। फिर भी मैंने अपनी जिद नहीं छोड़ी। कोई फायदा न देख कर वह ऊब उठा और मुझे गुलाम

लालन-पालन करने लगा। उसके ऊपर विश्वास करके उसने उसे स्वच्छन्द छोड़ दिया। धर्मसिंधु भी अपने मालिक के प्रति विश्वास ही दिखाता आया। इतने दिनों के बाद उसे अपने इष्ट-देव के सामने बलि देने लायक आदमी मिला, इस खुशी में वह दीन-दुनियाँ की सुधि भूल गया।

इस बीच धर्मसिंधु उस बूढ़े से मिलता और सलाह-मुशविरा करता रहा। दोनों एक निश्चय पर पहुँच गए।

उस निश्चय के अनुसार धर्मसिंधु ने एक दिन धूर्तकेतु से मीठी-मीठी बातें कीं और उसके पैरों के पास अपना सिर रख कर उस पलङ्ग पर सोने की तैयारी कर डाली। धूर्तकेतु ठीक उस पलङ्ग के बराबर हो गया।

धूर्तकेतु को सोते-सोते पलङ्ग के साथ उस असुर-शक्ति के मन्दिर में ले जाने का सब इन्तजाम पहले ही हो गया था।

'शक्ति' प्रत्यक्ष हुई! पलङ्ग के ठीक बराबर सोए धूर्तकेतु को चूड़ा और धर्मसिंधु बलि देने को तैयार हो गए। लेकिन उस 'शक्ति' को अपने भक्त के ऊपर दया आ गई। इसलिए उसने उसे और एक बात बता कर बिदा कर दिया। अपने वचन के मुताबिक उसने धर्मसिंधु को सोना बनाने का उपाय बता दिया।

धर्मसिंधु ने उस मकान पर दखल जमा लिया। और सोना बना कर ढेर लगा दिया। उस बूढ़े को उसने अपना गुरु मान लिया फिर धूर्तकेतु की तरह छल-कपट से नहीं, बल्कि सच्चे-दिल से, परोपकार की भावना से, वह उस बीहड़ रास्ते से आने-जाने वालों का स्वागत-सत्कार करके अपना जीवन सार्थक करने लगा।

बचपन के दिन

| 'अशोक' बी. ए. |

मेरे जब बचपन के दिन थे।
तब रात रुपहली होती थी—
सोने से सुन्दर वे दिन थे।
मेरे जब बचपन के दिन थे।

जब धूल और मिट्टी में सन कर
"धूल-भरे-हीरे"—बनते थे!
सबको प्यारी बोली लगती—
तुतलाकर जब कुछ कहते थे।
थी आजादी सभी तरह की—
कुछ भी न किसी के बन्धन थे!
मेरे जब बचपन के दिन थे।

घुटनों के बल सरक सरक कर—
चलना सबको अति भाता था!
रोना और मचलना भी तो—
खेल अनोखा कहलाता था।
फूली नहीं समाती थी माँ—
जब बजते पग के कङ्गन थे।
मेरे जब बचपन के दिन थे।

बड़े प्यार से चूम चूम कर—
माँ अपना मन बहलाती थी!
मुझको रोता हुआ देख कर—
माँ की आँखें भर आती थीं।
मुझे उदास देख कर माँ के—
भर भर आते तभी नयन थे।
मेरे जब बचपन के दिन थे।

जाने कहाँ गया वह बचपन—
सोने-चाँदी सी दिन-रातें!
कहाँ गए वे संगी-साथी—
कहाँ गईं वे मीठी-बातें।
अब एक याद रह गई शेष—
बचपन के अति सुन्दर दिन थे।
मेरे जब बचपन के दिन थे

माणिक्य-वाचकर

मदुरा-नगरी में जब पांड्य-राजाओं का राज्य था, तब 'वादवुरार' नामक एक शिव-भक्त वहाँ का मन्त्री था।

एक दिन राजा ने 'वादवुरार' को बुला कर कहा—'मन्त्री, सारे चोल-राज्य में घूम कर देखो, और पैसे की चिन्ता किए बगैर ऐसे घोड़े खरीद लाओ जिनसे हमारी प्रतिष्ठा हो।'

'बहुत अच्छा!'—कह कर 'वादवुरार' वहाँ से चल पड़ा। चलते-चलते एक जगह मौलश्री पेड़ के नीचे बैठा हुआ एक बूढ़ा ब्राह्मण उसे दीख पड़ा।

उस तेजोदीप्त ब्राह्मण का मुख-मण्डल देखते ही 'वादवुरार' के मन में हलचल मच गई। वह उसके सामने दण्डवत् हो गया और साष्टांग प्रणाम करने के बाद बोला—'बचपन से मेरी इच्छा मुक्ति पाने की रही है। अब आपको देख कर मन में ऐसा विश्वास होता है कि आप से ही वह दुर्लभ चीज मुझे मिलेगी! अतः आप मुझे भव-सागर से पार उतरने का उपाय बता कर पुण्य-संचय करें!'

यह सुन कर वह बूढ़ा ब्राह्मण अपने असली शिव-रूप में प्रत्यक्ष हुआ और भक्त 'वादवुरार' को मुक्ति का मार्ग बता कर अदृश्य हो गया।

उसी क्षण से 'वादवुरार' के मन में कविता करने की इच्छा हुई और अपने इष्ट-देव की स्तुति में वह आशु-कविता करने लग गया।

'वादवुरार' की कविता से खुश होकर एक दिन शिवजी उसके सामने आ खड़े हुए।

'भक्त-शिरोमणि, तुम्हारे मुँह से जो एक-एक शब्द निकलता है, वह एक-एक

गोपालकृष्ण रेड्डी

माणिक्य के बराबर है। इसलिए दुनियाँ में तुम 'माणिक्य वाचकर' के नाम से प्रसिद्ध होगे।'—ऐसा कह कर शङ्कर अंतर्धान हो गए।

उसके हाथ में घोड़े खरीदने के लिए जो राज-धन था, उससे उसने एक शिवालय बनवा दिया और सब कुछ भूल कर अपने इष्ट-देव की आराधना करने लगा। इतने में राजा के दूत मन्त्री को खोजते खोजते वहाँ आ पहुँचे। और 'वादवुरार' को देख कर उन्होंने तुरन्त दरबार में हाज़िर होने का हुक्म उसे सुना दिया।

'वाचकर' राजा के आदमियों के साथ मदुरा-नगरी पहुँचा। उसे मालूम था कि राजाज्ञा के पालन में इतनी देर हुई है और वह खाली हाथ आ रहा है। ऐसी हालत में राजा का क्रोध उस पर पड़ेगा ही! हुआ भी वही। मन्त्री को खाली हाथ देख कर राजा के गुस्से का ठिकाना नहीं रहा। उसने तुरन्त 'वाचकर' को बन्दी-खाने में डाल दिया और अनेक तरह से सताया....!

भक्त के कष्टों को देख कर महादेव का दिल पिघल गया। उन्होंने 'वाचकर' की रक्षा के लिए एक अद्भुत उपाय सोचा। कुछ सियारों को उन्होंने बढ़िया घोड़ों में बदल दिया। फिर खुद एक सौदागर का वेश बना कर उन नकली घोड़ों के साथ राजा के दरबार में हाज़िर हुए।

उन घोड़ों को देखते ही राजा आश्चर्य में पड़ गया।

सौदागर ने राजा से कहा—'महाराज! मैं माणिक्य वाचकर का मित्र हूँ। उसने मुझे बढ़िया घोड़े खरीदने का काम सौंपा था। घोड़े आपके सामने हैं, महाराज!'

जल्दी-बाज़ी में राजा ने मन्त्री पर जो अत्याचार किया था, इसके लिए वह पछताया

और तुरन्त उसे कैद से छोड़ देने का हुक्म दे दिया।

राजा के नौकरों ने ले जाकर घोड़ों को अस्तबल में बाँध दिया। लेकिन रात होते ही नकली घोड़ों ने अपना असली रूप लिया और 'हुआँ-हुआँ' करके अस्तबल के घोड़ों को नोचने-काटने लग गए! यों राजा की अश्व-शाला में भारी तहलका मचा कर वे सियार जङ्गल में भाग गए।

यह अजीब खबर सुनते ही राजा आग-बबूला हो गया। मन्त्री धोखा दे रहा है, यह सोच कर राजा पहले से भी ज्यादा उसे सताने लग गया।

अपने भक्त को यों अकारण असह्य कष्ट भोगते देख कर भगवान शङ्कर उग्र हो उठे और उन्होंने अपने माथे से गङ्गा को भूतल पर उतार दिया। देखते-देखते वैगा-नदी ऐसी उमड़ी कि मदुरा-नगरी के बह जाने का खतरा हो गया। ऐसे संकट के समय राजाज्ञा से नगर की सारी जनता उठ खड़ी हुई और मिट्टी खोद-खोद कर वैगा-नदी के बाँध को मज़बूत बनाने लगी।

उधर बाँध को तोड़ने के लिए नदी गरजती आ रही थी, इधर नगर के बाल-बच्चे, बूढ़े-सयाने, औरत-मर्द सभी टोकरी उठाए उस पर मिट्टी डालते जा रहे थे। सिर्फ एक बुढ़िया अपने घर में चुपचाप बैठी देख रही थी और मन ही-मन पछता रही थी कि ऐसे समय वह कुछ भी नहीं कर रही है!

उसी समय एक छोटा लड़का वहाँ आया और बुढ़िया की उदासी देख कर बोला—'दादी, तुम कोई चिन्ता न करो! राजा तुम्हें कुछ नहीं कहेगा। चलो, तुम्हारा काम भी मैं ही कर दूँगा।'

लड़के की बात सुनते ही बुढ़िया खुश हो गई और रोटियों की गठरी सिर पर रख
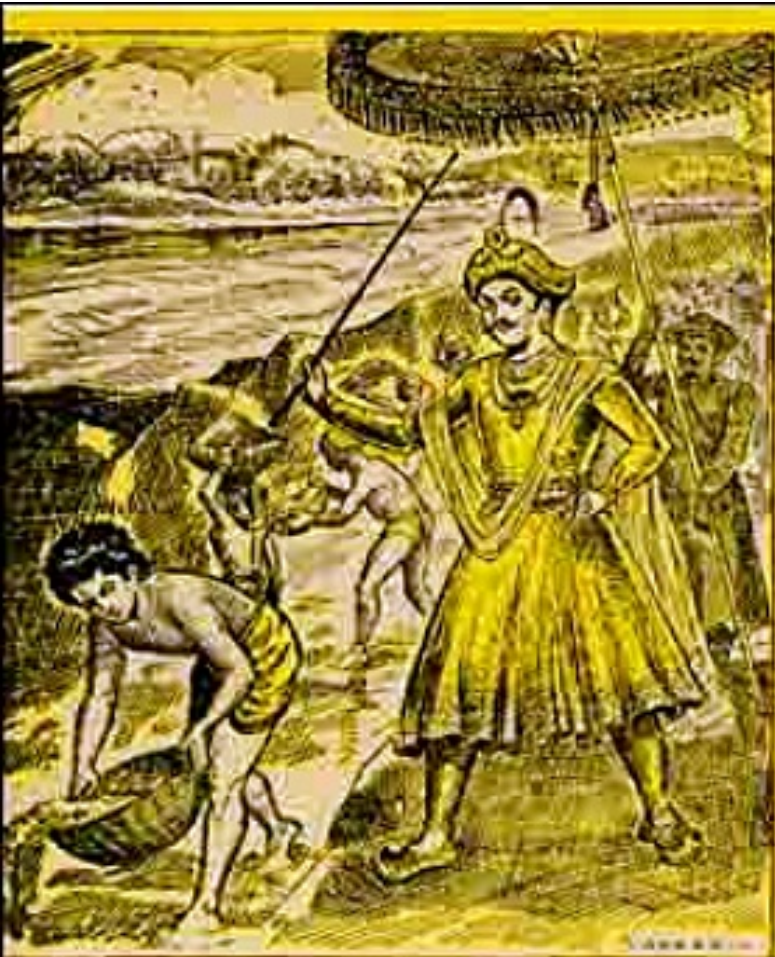
कर वह उसके साथ चल पड़ी। नदी के पास पहुँच कर वह लड़का बुढ़िया की रोटी खाते खेलने कूदने लगा। दूसरे लड़के भी उसके आगे-पीछे हो गए और वह सबों के साथ मज़ाक-मखौल करने लगा।

राजा ने उसे देखा। ऐसे संकट के समय, जब सब लोग आतुर होकर, काम कर रहे थे, यह लड़का यों खेले!—राजा को गुस्सा आ गया। उसके हाथ में एक पतली छड़ी थी। खींच कर उसने उस लड़के की पीठ पर दे मारी। लेकिन लड़के पर छड़ी पड़ते ही एकाएक सब लोग चौंक उठे और तिल-मिला कर अपनी-अपनी पीठ सहलाने लगे। यहाँ तक कि राजा भी चौंक उठा और वह भी व्यग्रता से अपनी पीठ सहलाने लग गया। ऐसा मालूम हुआ, जैसे राजा की वह छड़ी एक साथ ही सबों की पीठ पर पड़ी हो। पीठ पर छड़ी पड़ते ही राजा की आँखें खुल गईं। राजा समझ गया कि यह लड़का और कोई नहीं, खुद भगवान ही हैं! बस, वह उनके पैरों पड़ गया।

इतने में वह लड़का लापता हो गया। इसके साथ वहाँ के लोग एक और भी बात कहने लगे—'हम इतने लोग मिट्टी डालने में लगे थे; पर बाँध बँध नहीं रहा था! अब टूटा, तब टूटा हो रहा था। इतने में वह खिलाड़ी लड़का खेलते-खेलते वहाँ आया और अपने हाथ से एक मुट्ठी मिट्टी उठा कर नदी की लपकती लहरों में डाल दी। फिर तो, जैसे सपेरे ने अपनी लकड़ी साँप को छुआ दी हो। बस, बाढ़ रुक गई और मदुरा-नगरी डूबने से बच गई!'

यह अद्भुत बात कानों में पड़ते ही राजा और भी अचरज में आ गया। उसने

प्रण किया—'जब तक उस लड़के को नहीं देखूँगा, यहाँ से हिलूँगा नहीं!'

उसी समय राजा को आकाश-वाणी सुनाई पड़ी:

'तुम जिसे कैद में डाल कर सता रहे हो; वह मेरा परम भक्त है। भक्त ही नहीं, मेरा शिष्य भी है! अब भी तो चेत जाओ!'

राजा जल्दी-जल्दी माणिक्य वाचकर के पास पहुँचा। फिर अनुनय-विनय करके अपनी गलतियों के लिए उससे क्षमा चाही। और तुरंत उसे कारागार से मुक्त कर दिया।

वाचकर तिरुप्पन्दुरै में निश्चिन्त होकर शिवजी की आराधना करने लगा। फिर उसे महादेव का आदेश हुआ कि 'चिदम्बरम चले जाओ!' बस, वाचकर चिदम्बरम चला गया। वहाँ एक जैन-साधु अपने धर्म का प्रचार कर रहा था। वाचकर और उस जैनी साधु के बीच खूब वाद-विवाद हुआ। लेकिन जब वह जैन-साधु वाद-विवाद में जीत न सका, तब बोला—'अच्छा! तुम अगर चोल-राज्य की गूँगी राजकुमारी को वाचाल कर दो तो मैं अपनी हार मान लूँगा!'

जैन-साधु की यह बात सुन कर वाचकर कुछ असमंजस में पड़ गया। लेकिन तुरंत शिव का ध्यान करके उसने उसकी शर्त मन्जूर कर ली और उसके सारे प्रश्नों का जवाब उसी गूँगी राजकुमारी के मुँह से दिला दिया।

उस गूँगी के मुँह से वैसे मुश्किल सवालों का सही-सही जवाब सुन कर सब लोग अत्यन्त चकित रह गए। यह देख कर वह जैन-साधु उठा और वाचकर के पैरों पर पड़ गया। फिर वह उनका परम प्रिय शिष्य हो कर शैव-धर्म का प्रचार करने लगा।
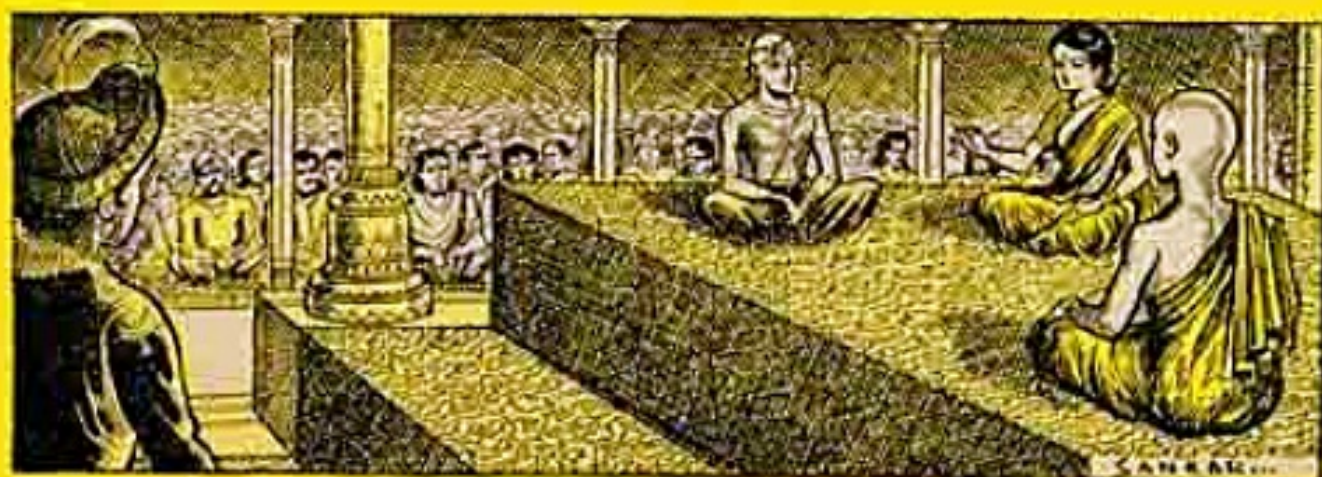
एक नजर

गुरु गोविन्दसिंह एक रोज अपने दरबार में बैठे थे कि नौकर एक आदमी को पकड़ कर उनके सामने ले आया और कहने लगा—'हुजूर! इस आदमी का नाम है कन्हैया। यह बहुत बड़ा बदमाश और नमक हराम है। इसी से हुजूर के सामने इसे हाजिर कर रहा हूँ।'

कन्हैया प्रतिष्ठा-प्रिय, उदार तथा सहृदय आदमी था। यह बात गुरु गोविन्दसिंह को खूब मालूम थी। फिर भी गुरुजी ने उस नौकर से पूछा—'इसने क्या गुनाह किया है?'

नौकर ने जोश के साथ कहा—'हुजूर! हमारे दल के लोग जब दुश्मनों को काट काट कर गिरा रहे थे, तब यह मरते हुए एक मुसल्मान सिपाही के मुँह में पानी डाल रहा था! देखिए, तो इसका स्वामी-द्रोह!'

यह बात सुनकर गुरुजी ने कन्हैया से पूछा—'कहो, भाई! तुम इसका क्या जवाब देते हो?'

कन्हैया यों कहने लगा—'महाराज! जब मैं रण-भूमि में होता हूँ, तब हिन्दू-सेना और मुसलिम-सेना का भेद मेरी नज़र में नहीं रहता है। कोई भी घायल हो गया हो, तो वह मेरे लिए भगवान ही बन जाता है। किसी भेद-भाव के बिना यथा-शक्ति मैं घायलों की सेवा करता रहता हूँ। यही मेरा अपराध है, हुजूर!'

सोमनाथ

अमृत से भी यह मीठी बोली सुन कर गुरु गोविन्दसिंह को अपार खुशी हुई और कन्हैया को बुला कर उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया।

इतना ही नहीं, अपनी पेटी से गुरुजी ने एक डब्बा निकाला और उसके हाथ में देकर कहा—'भाई, पानी ही नहीं, जो भी सिपाही घायल हो जाय, जात-पाँत का विचार किए बगैर, यह तेल भी उसके शरीर में मल देना जिससे उसके घाव जल्दी भर जाय। तुम खुद समझदार हो। फिर भी मेरी एक बात याद रखना। हमारे इस युद्ध में हिन्दू और मुसलमान नहीं लड़ रहे हैं। आदमी-आदमी नहीं लड़ रहे हैं अधर्म पर विजय पाने के लिए खुद धर्म देवता लड़ रहे हैं। नहीं तो हम में किसी तरह का भेद-भाव नहीं रहता। क्योंकि हम सब एक हैं और एक ही ईश्वर की संतान हैं।'

यों गुरु गोविन्दसिंह ने उसे उपदेश दिया।

गुरु की आज्ञा सिर-आँखों पर रख कर कन्हैया ने वह तेल का डब्बा उठाया और मानव सेवा के लिए फिर युद्ध-भूमि में पहुँच गया।

इस नए शिष्य को देख कर गुरुजी की और दूसरे शिष्यों की भी आँखें खुलीं और उन्होंने गुरुजी के उपदेश को अपने जीवन का लक्ष्य-मन्त्र मान लिया।

नौ की करामात

(१) नौ का पहाड़ा पढ़ो। एक एक लाइन में गुणा करके आखिर तक लगातार एक से लेकर दस तक मिला कर जोड़ो। फिर जो आए उसका तमाशा देखो :—

$9 \times 1 = 9 + 1 = 10$	$9 \times 6 = 54 + 6 = 60$
$9 \times 2 = 18 + 2 = 20$	$9 \times 7 = 63 + 7 = 70$
$9 \times 3 = 27 + 3 = 30$	$9 \times 8 = 72 + 8 = 80$
$9 \times 4 = 36 + 4 = 40$	$9 \times 9 = 81 + 9 = 90$
$9 \times 5 = 45 + 5 = 50$	$9 \times 10 = 90 + 10 = 100$

बी. वीरप्पा—गुण्टकल

(२) नौ अंक से गुणा करने पर इन जोड़ों का खेल देखो :—

```
  1 1 2 2 3 3 4 4 5 5 6 6 7 7 8 9
                               9 9
  ----------------------------------
  1 0 1 0 1 0 1 0 1 0 1 0 1 0 1 0 1
1 0 1 0 1 0 1 0 1 0 1 0 1 0 1 0 1
  ----------------------------------
1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1
```

बी. एच. अम्मा
अमलापुरम

(३) नौ के गुणा का और एक खेल :—

$$1 \times 9 + 2 = 11$$
$$12 \times 9 + 3 = 111$$
$$123 \times 9 + 4 = 1111$$
$$1234 \times 9 + 5 = 11111$$
$$12345 \times 9 + 6 = 111111$$
$$123456 \times 9 + 7 = 1111111$$
$$1234567 \times 9 + 8 = 11111111$$
$$12345678 \times 9 + 9 = 111111111$$
$$123456789 \times 9 + 10 = 1111111111$$

देसाई शेट्टी, गणपति राव ओझूर

(४) 896969 इस अंक की बड़ी संख्या होती है 1303938 कुल। इस में से 969696 निकाल लो। बाकी 424242 बचेगा। इस में 242424 मिलाओ। कुल 666666। अब ऊपर 696969 निकाल देने से 666665। इस संख्या में 30303। अंक जोड़ने से $3 + 3 + 3 = 9$।

एल. आर. एच. जमुरिया

बदला लेने वाली पगड़ी

मारवाड़ राज्य का राजा था जयदेव। एक दिन उसके दरबार में एक भाट आया। उसने राजा की तारीफ़ में अनेक कविताएँ सुनाईं।

राजा उस की कविताएँ सुन कर खुश तो बहुत हुआ। उसका आदर-सत्कार भी किया। लेकिन जयदेव को असल में कवियों और भाटों से कोई खास सहानुभूति नहीं थी।

इसी लिए उसने उस भाट को, इनाम इकराम देना तो दूर रहा, उल्टे उसने उसका अपमान करना शुरू कर दिया।

उस भाटने गुस्सेसे राजा को गाली देते हुए सीधे हरवंशों की राजधानी 'बुमोडा पट्टन' की राह पकड़ी। नगर में पहुँच कर वह किले के गुम्बद के पास राजा से मिलने के मौके की ताक में बैठ गया। राजा का नाम था आल्हर। वह शिकार खेल कर लौट रहा था।

कुछ देर के बाद राजा आल्हर शिकार खेल कर लौटा। वह किले के अन्दर घुस ही रहा था, कि उस भाट ने राजा पर आशीर्वादों की झड़ी लगा दी।

आल्हर ने खुश हो कर कहा—"माँगो, क्या चाहिए तुम्हें।" राजा ने सोचा कि यह भाट धन-दौलत, जमीन जायदाद के सिवा और माँगेगा क्या! लेकिन उस भाट ने माँगा—"महाराज, आप अपनी पगड़ी मुझे दे दीजिए।" यह सुन कर राजा को बड़ा अचरज हुआ।

"मेरी पगड़ी लेकर तुम क्या करोगे! तुम्हें तो माँगना चाहिए धन-दौलत। वह सब कुछ न माँग कर कपड़े का एक टुकड़ा माँग रहे हो, कैसे पागल हो तुम!" यह सुन कर वह भाट बोला—"महाराज, आप की पगड़ी पहन कर घूमने की मेरी बड़ी

मुनीश श्रीवास्तव

सच है। इसे पहन कर मैं देश विदेश घूमूँगा और आप की कीर्ति फैलाऊँगा।'

आल्हर बात का धनी था। उसने भाट को वचन दे दिया था। इसलिए झट अपने माथे से पगड़ी उतार कर उस के हाथ में रख दी। हीरे-जवाहरों से जड़ी वह चमकदार पगड़ी सिर पर रख कर वह भाट शान के साथ अकड़ता हुआ चला गया।

उसको देख कर लोगों ने कहा—"जरूर वह एक पागल है।" बहुत दिनों तक नगर के लोग घर-घर में अनेक तरह की बातें करते उस भाट पर हँसते रहे। धीरे-धीरे उस पागल की याद सबों के मन से जाती रही।

कुछ दिनों के बाद जब राजा दरबार में बैठा था कि वही भाट सहसा उसके सामने आ खड़ा हुआ और मैली-कुचैली पगड़ी को राजा के सामने रख कर फूट-फूट कर रोने लगा। राजा ने आतुरता से पूछा—"क्यों, भाई, इस तरह दुःखित क्यों हो रहे हो?"

राजा की बात सुन कर भाट बोला—"क्या सुनाऊँ, महाराज! यह कहते हुए दुःख होता है कि महाराज के नाम का अपमान हो गया है।" और भी आतुर होकर राजा ने पूछा—"क्या हुआ है?"

"महाराज की यह पगड़ी सिर पर रख कर मैं देश-देश में घूमता रहा। राजाओं के दरबार में जा कर कविताएँ पढ़ीं। जिस राजा के पास गया, उस के सामने सिर झुकाने के पहले, आप की यह पगड़ी अपने सिर से उतार कर अपने दाहने हाथ में रख ली। और बाएँ हाथ से उसे सलाम किया। जब कोई पूछता कि ऐसा क्यों कर रहे हो? तो मैं जवाब देता—यह चक्रवर्ती आल्हर महाराज की पगड़ी है। यह पगड़ी किसी को सलाम नहीं कर सकती।" उसकी यह बात सुन कर आल्हर की खुशी का ठिकाना न रहा। दरबारियों ने

जोश के साथ कहा--"शबाश कविराज! तुमने महाराज के गौरव को खूब बढ़ाया!!"

"लेकिन महाराज, आखिर तक आप के गौरव की रक्षा मुझसे न हो सकी। मारवाड़ के राजा जयदेव के दरबार में महाराज की इस पगड़ी का भारी अपमान हो गया!"

"क्या हुआ!" राजाने फिर पूछा। अभ्यास के मुताबिक जैसे ही मैंने उसको नमस्कार किया तो उसने भी मुझसे इसका कारण पूछा। मैंने वही जवाब दिया जो औरों को दिया था। मेरा जवाब सुन कर वह विचलित हो उठा और दूसरे राजाओं की तरह वह आप की तारीफ़ न सुन सका। उल्टा राज-गद्दी से उठा और मेरे हाथ से पगड़ी छीन ली। फिर उसे अपने पैरों से रौंदा और मुझे मार-पीट कर दरबार से निकाल दिया।" भाट ने यह बातें कुछ इस तरह कहीं कि राजा के दिल में घाव-सा हो गया।

भाट की बात सुन कर आल्हर गुस्से से जल उठा। इसके साथ साथ सभी सभासद गरज उठे—"महाराज का अपमान करने वाले उस जयदेव का होश दुरुस्त कर देना चाहिए। महाराज, तुरत सेना भेजिए और जयदेव के गर्व को चूर-चूर कर डालिए।"

दरबार में एक बूढ़ा मंत्री भी था। उसने कहा—'एक कपड़े के टुकड़े के लिए दूसरे राजा से बैर मोल लेना ठीक नहीं।' लेकिन नकार खाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता!

आल्हर युद्ध की घोषणा किए बिना ही खुद सेना लेकर मारवाड़ की राजधानी मनडूल-नगर पर चढ़ गया। फिर जयदेव और आल्हर के बीच घमासान लड़ाई हुई। जयदेव लड़ते-लड़ते रण-भूमि में सो गया और मनडूल के किले पर आल्हर का कब्जा हो गया! अपने अपमान का ऐसा बदला पाकर उस भाट की खुशी का ठिकाना न रहा!

उज्जैन-नगर में बड़े-बड़े राजा हो गए हैं। एक बार वहाँ एक बहुत बड़ा अन्यायी राजा हुआ। उसके अत्याचारों की वजह से प्रजा में असंतोष हुआ और कुछ दृढ़-संकल्प वालों ने राजा के विरुद्ध एक जबरदस्त आन्दोलन खड़ा कर दिया। वह दुष्ट राजा डर गया और उज्जैन छोड़ कर भाग खड़ा हुआ।

उज्जैन के पास नर्मदा-नदी बहती है। नर्मदा के उस तरफ़ के प्रदेशों पर राजा मार्तण्ड का शासन था। अपने राज्य से भागे हुए उज्जैन के राजा ने मार्तण्ड-महाराज की शरण ली। उसने उज्जैन के राजा की दुष्टताओं का ख्याल न किया और उसकी उस दुरवस्था पर तरस खा कर, उज्जैन पर चढ़ाई करने को तैयार हो गया।

इस बीच उज्जैन में जनता का राज्य कायम हो गया। देश के सभी छोटे-बड़े, युवक-योद्धा, इस अपने नए राज्य को जी-जान से मज़बूत बनाने लगे। यों अत्याचारी शासन का ख़ातमा हुआ। उद्योग-धन्धे बनिज-व्यापार, सब ठीक-ठीक चलने लगे। हाकिम-हुक्काम निरभिमान होकर काम करने लगे। किसी को चोरों का भय और जान जाने का डर नहीं रह गया। जनता में एक नव-जीवन का आरम्भ हुआ और अत्याचारी शासन से मुक्त होकर लोगों ने सुख की साँस ली।

ऐसे समय जन-राज्य के गुप्तचरों ने उज्जैन वालों को मार्तण्ड-महाराज की चढ़ाई की खबर दी। देश के चुने हुए शासनाधिकारी यह बात सुन कर घबरा उठे। क्योंकि उज्जैन के पास सैनिक-शक्ति बहुत थोड़ी थी। डर था कि मार्तण्ड-महाराज की जीत होगी। सेना जमा करने का मौका भी उज्जैन वालों को नहीं मिला।

अशोक कमल गुप्त

इस संकट-काल में उज्जैन वालों ने एक आम-सभा बुलाई। उस सभा में—"उज्जैन की रक्षा करो!" का नारा जोर से लगने लगा।

"उज्जैन की रक्षा कौन करेगा? जो इसका उपाय बता सकता है, वह आगे आए!" बड़े-बूढ़ों ने सवाल किया।

नौजवानों में से एक आदमी भीड़ को चीरता आगे आया और जोशीली आवाज़ में बोला—'सिर्फ़ बीस-योद्धा मुझे दे दो! मैं उज्जैन की रक्षा करूँगा!' उस नौजवान की यह बात सुन कर सब लोग अचरज में पड़ गए। बीस हजार सधे हुए योद्धा जहाँ चढ़े आ रहे हों, वहाँ यह नौजवान केवल बीस सैनिकों के साथ मुकाबला करेगा! यह कैसे संभव हो सकता है!

उनके इस सन्देह का उसने इस तरह समाधान किया—'उज्जैन के अन्दर आने को मार्तण्ड-महाराज की सेना के लिए केवल एक रास्ता है। और वह है नर्मदा-नदी का पुल। उस पुल पर से एक के पीछे एक आदमी ही आ-जा सकता है। अगर हम उस पुल के खम्भों की आड़ में खड़े हो जाएँ तो एक चींटी भी वहाँ से बच कर नहीं जा सकती है। जरूरत पड़ने पर हमारे बीस सिपाही ही उस पुल को तोड़ भी सकते हैं। इसलिए बड़ी सेना को देख कर हमें डरने की जरूरत नहीं!'

विक्रम का यह जवाब सुनकर सब लोग बहुत खुश हो गए। सहसा विक्रम के साथ जाने के लिए अनेकों नौजवान आगे आ गए। उनमें से बीस नौजवानों को विक्रम ने चुन लिया और शीघ्र नर्मदा-नदी के किनारे पहुँच गया। फिर खम्भों के बीच छिपकर बैठने की जगह ठीक कर ली।

सूर्योदय होते ही मार्तण्ड-महाराज की सेना उस लकड़ी के पुल को पार करने लगी।

इधर वीर विक्रम सब से आगे आकर पुल पर खड़ा हो गया और जो लोग आते गए उन्हें वह तलवार के घाट उतारने लगा। मार्तण्ड-महाराज की सेना इस अदृश्य मृत्यु का रहस्य न समझ कर घबरा उठी। उसकी खोज में जो जो लोग आगे आए, विक्रम के हाथों मौत के मुँह में पहुँचते गए। यह देख कर लोग घबरा उठे और उल्टे पैर भाग खड़े हुए।

यह खबर कान में पड़ते ही मार्तण्ड-महाराज के हाथ-पैर फूल गए। उन्होंने सैनिकों की गुप्त-हत्या करने वालों का पता लगाने का अनेक तरह से उपाय सोचा। छोटी-छोटी डोंगियों में भर कर बहुत से सैनिकों को नदी के उस पार भेजने की कोशिश की। लेकिन बीच धार में जाते-जाते उस पार के पेड़ों की आड़ से, बाण आ-आ कर सैनिकों को नदी में सुलाने लग गए।

उधर पुल की रक्षा करने वाले वीरों की हालत भी अच्छी नहीं कही जा सकती थी। क्योंकि मरे हुए सैनिकों की आड़ में छिप-छिप कर शत्रु सेना आगे बढ़ती ही आ रही थी। वीर-रक्षकों के बाण उन्हें रोकने में असमर्थ हो रहे थे। खम्भों की आड़ में खड़े कुछ लोग घायल भी हो चुके थे।

विक्रम समझ गया कि अगर इसी तरह दुश्मन के सिपाही प्राणों पर खेलते आगे बढ़ते आए तो पुल की रक्षा असम्भव हो जाएगी।

कुल्हाड़ों से पुल को तोड़ने और टूट जाने पर पुल के पीछे रहने वालों को वहीं से लौट जाने का विक्रम ने आदेश दिया। वीर-विक्रम को छोड़ कर और सभी लोग पुल के गिरने के पहले ही उस किनारे पर पहुँच गए। थोड़ी देर में करीब-करीब सारा पुल टूट कर नर्मदा-नदी की धारा में बह गया।

विक्रम के सिवा उसके सभी संगी-साथी उस किनारे पर पहुँच गए थे। मार्तण्ड-महाराज के सिपाहियों ने वीर-विक्रम को जीवित पकड़ लिया और वे मुश्कें बाँध कर शिविर में ले गए।

उस समय मार्तण्ड-महाराज अपने प्रधान अनुचरों के बीच बैठे आग ताप रहे थे। तभी सिपाहियों ने विक्रम को उनके सामने हाज़िर किया। ज्वाला के प्रकाश में विक्रम का गर्वीला चेहरा और भी चमक उठा।

"मैं कायर नहीं जो भाग जाऊँ। मेरी मुश्कें खोल दो!" विक्रम ने गरज कर कहा।

"छिप कर मेरे सिपाहियों को मारने वाले तुम शूर-वीर कैसे हो सकते हो!" मार्तण्ड-महाराज ने होंठ काटते हुए कहा।

"एक अधर्म युद्ध में आत्म-रक्षा के लिए और किया ही क्या जा सकता है?" विक्रम ने गंभीर-स्वर में कहा।

"क्या वह अधर्म युद्ध था?"

"हाँ! डंके की चोट कहता हूँ—अधर्म—अधर्म—अधर्म!—सौ बार अधर्म—!! आपने हम पर बिना कारण और चुपचाप चढ़ाई कर दी। युद्ध की घोषणा भी नहीं की। क्या यह अधर्म युद्ध नहीं कहा जाएगा!"

"एक अराजक देश के ऊपर चढ़ाई करने में घोषणा की क्या जरूरत"!

"हमारा देश अराजक नहीं, उस राज्य पर जनता का राज्य है। जनता ही वहाँ की राजा है।

"जनता-राज्य कोई राज्य नहीं माना जा सकता। वह राज्य कायम भी नहीं रह सकता।"

"हम अपने उस जन-राज्य को जरूर कायम रखेंगे। मेरी मुश्कें खोल दीजिए। मैं आप से कुछ बात-चीत करना चाहता हूँ।" विक्रम ने व्यग्रता से कहा।

मार्तण्ड-महाराज ने उस की मुश्कें खुलवा दीं। और उसे पास ही बैठ जाने को कहा।

"मैं तुम्हारे देश को एक पल में नष्ट कर दूंगा। तुम्हारे ऐसे कायरों की मुझे परवाह ही क्या है? जब तक तुम अपने देश में एक राजा नहीं बना लेते, तब तक मैं उसे एक राज्य नहीं मान सकता।" मार्तण्ड-महाराज ने उपेक्षा से कहा।

"मेरे देश में मुझसे कहीं ज्यादा साहसी युवक तैयार हैं। वे लोग अपने राज्य की जी-जान से रक्षा करेंगे। वे कैसे साहसी हैं, यह मैं आपको बताना चाहता हूँ।

उसी समय आग से चिनगारियाँ उड़ीं और उसकी पलकों पर आ बैठीं। लेकिन वीर-विक्रम चौंका भी नहीं—ज्यों-का-त्यों बैठा रह गया। राजा अचंभे में पड़ कर बोला—"जरा दूर हट कर बैठो—चिनगारियाँ उड़ रही हैं!"

"इन नाचीज चिनगियों की क्या हस्ती है, महाराज! जब हम बड़े-बड़े भूपालों के क्रोधा-नल में कूद पड़ते हैं और उन्हें कोयला बना देते हैं! हमारी धमनियों में जो खौलता खून बह रहा है, उसके सामने इन सूखी लकड़ियों की आग क्या चीज है!....देखिएगा.... ऐसा कहते हुए उसने अपना दाहिना हाथ झट से आग में डाल दिया।

विक्रम का साहस और उस की दृढ़ता को देख कर मार्तण्ड-महाराज दंग रह गए। उसने विक्रम को सादर मुक्त कर दिया और दूसरे ही दिन अपने दल-बल के साथ डेरा डण्डा उठा कर भाग खड़े हुए।

डाक्टर से डाक्टर

*

छोटा कोई एक डाक्टर तुम को जब वह देख रहा हो,
समझ न पाए गर बीमारी को, तब तुम समझो दो।

दोनों छोटे डाक्टर भी हों, जब शक्ति में दीन,
एक और को फिर ये बुलाएँ, हो जाएँ वे तीन।

तीनों छोटे डाक्टर तुम को जब देखें लाचार,
भेज दें तब पास बड़े के, और हो जाएँ चार।

डाक्टर छोटे चार करें जब, खूब तुम्हारी जाँच,
एक लाएगा 'पम्प पेट' का, फिर होंगे यह पाँच।

छोटे डाक्टर पाँच करेंगे, तुम पर बहुत स्नेह,
ऐक्सरे को भेजेंगे वह और होंगे यों छह।

छहों तुम्हारे लिए विचारें, फिर वे नरक की बात,
आएँ तब एक डी. डी. साहब, हो जाएँ वह सात।

करें फैसला अपरेशन का सातों डाक्टर साथ,
और मिला कर एक सरजन को, वह बन जाएँ आठ।

आठ डाक्टर कहें यह मिल कर तेज है चलती नाड़ी जो,
पूछेंगे फिर एक्सपर्ट को, और होंगे वह नौ।

नौवों डाक्टर देखेंगे जब अपने को बेबस,
सौंप देंगे लेडी डाक्टर को, और होंगे वे दस।

दसों डाक्टर खड़े हों घेरे जब यों तुम्हारी खाट,
फिर तो समझो जोह रही है मौत तुम्हारी बाट!

दीवार की तस्वीर

किसी ज़माने में विन्ध्याचल-राज्य के ऊपर हरिहर राय का शासन था।

राजा के एक ही बेटी थी। जिस का नाम था विद्यावती। वह सयानी हुई। शादी की तैयारियाँ धूम-धाम से होने लगीं। देश देश से चतुर कारीगर बुलवाए गए। नये नये मकान बनने लगे। मण्डप और चित्रशालाओं की रचना होने लगी।

सजावट पूरी हुई। विवाह मण्डप भी तैयार हो गया। मन्त्रियों और परिजनों के साथ आकर राजा ने सब का स्वागत-सत्कार किया। सब संतुष्ट थे। कोई कमी न थी। लेकिन मण्डप की दीवारों पर जो चित्र बने थे, वे बिलकुल मामूली जान पड़ते थे। उनमें कोई विशेषता नहीं दीख पड़ती थी। राजा को केवल यही कमी खटक रही थी।

राजा का रुख देखकर मन्त्री ने निवेदन किया—' हम घोषणा करेंगे कि अद्भुत चित्र बनाने वालों को हम मुँह-मांगा इनाम देंगे। उसके लिए जरूर योग्य-व्यक्ति आ जाएँगे।' राजा को यह सलाह जँच गई।

ढिंढोरा पीटा गया। कुछ दिन के बाद दूर देश से दो चित्रकार आए। दोनों ने अपनी-अपनी तारीफ़ कह सुनाई। दूसरे चित्रकार ने सिर्फ़ एक प्रार्थना की। पहला चित्रकार जिस दीवार पर चित्र बनाए, ठीक उसके आमने सामने की दीवार पर मैं अपना चित्र बनाऊँ—इसकी आज्ञा मुझे दी जाए।

राजा ने उसकी यह शर्त मान ली!

दोनों के लिए दीवारें खड़ी की गईं। फिर चित्रकारों ने अपनी अपनी कूचियाँ संभालीं

नरेंद्र ठाकुर

दोनों अपने-अपने काम में जुट गए। ठीक एक महीना पूरा हुआ। राजा को खबर भेज दी गई। मन्त्री, सामन्त, पण्डित और परिजनों के साथ आकर, राजा सब से पहले प्रथम चित्रकार की दीवार के पास गया और पर्दा हटा कर देखने लगा। राजा और उनके साथ के सब लोग अचरज में डूब गए। समस्त प्रकृति उस दीवार पर नाच रही थी! राजा ने कहा—'अद्भुत! अत्यद्भुत!!'

किसी की आज्ञा लिए बगैर ही दूसरे चित्रकार ने अपने चित्र का आवरण हटा दिया। लोगों की दृष्टि उस ओर मुड़ी। राजा देखते ही मन्त्र-मुग्ध हो गया! कुछ देर के बाद होश में आने पर बोला—'आहा, कैसी सुषमा!'

पहले चित्रकार का चित्र अत्यन्त स्वाभाविक था और आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था। दूसरे के चित्र ठीक वैसे ही थे। लेकिन उनमें एक अद्भुत जीवन्त-ज्योति भर रहे थे! 'दोनों ने किस तरह ठीक एक-से चित्र बनाए? इनाम अब किसे दिया जाए?' यह समस्या उठ खड़ी हुई।

इसके बाद धीरे-धीरे इसका रहस्य लोगों को मालूम हुआ। दरअसल दूसरे चित्रकार ने कोई चित्र नहीं बनाया था। जब से पहले चित्रकार ने अपना काम आरम्भ किया, तब से वह अपनी दीवार को एक तरह के मसाले से चिकनाने और चमकाने लग गया। माँजते-माँजते वह दीवार आईने की तरह चमकने लगी। उसके सामने ही दूसरा चित्रकार चित्र बना रहा था और ये सब चित्र इस दीवार पर पड़ कर बिजली की तरह चमक उठे! उस प्रतिबिम्ब ने ही राजा और उसके दरबारियों को आश्चर्य में डाल दिया था!

चारों ओर चहल कदमी

★

एक गाँव में एक बन्दर आया। एक नट-खट लड़के ने उसे छेड़ा। वह चिढ़ गया। डर के मारे उसने माथा पीट लिया। बन्दर ने भी उसको देख कर अपना माथा पीटा। लड़के ने सोचा—"यह बन्दर जैसा मैं करता हूँ, वैसा ही करता है। इस के पूँछ है मेरे नहीं। इस की पूँछ पकड़ कर खींच लूँ, फिर देखूँ यह क्या करता है! इस ख्याल से लड़के ने उसकी पूँछ खींची तो बन्दर ने उसे काट खाया!"

—○—

'कैसा भी मामूली अंगरेज हो हिन्दुस्तान में हाकिम हो कर आते ही बड़ा प्रभावशाली हो जाता था। सचमुच वह एक आश्चर्य ही है न!' इस तरह एक हिन्दु साहब ने एक राजनितीज्ञ से पूछा।

इस पर वह राजनितीज्ञ यों बोला—इससे भी एक और आश्चर्य की बात है। आप जानते ही होंगे कि हमारे देश में जो बेकार के पत्थर होते हैं, उन्हें काट छाँट कर लोग मूर्ति बना देते हैं। और फिर उस की पूजा होने लगती है!"

एक विज्ञान-वेत्ता सारी दुनियां घूम कर अपने शहर में पहुँचा। उसने शहर में एक बड़ी सभा बुलाई और कहा—"मैं काश्मीर गया था। जिस बर्तन में मैं घी ले गया था वह जम कर पत्थर की तरह हो गया। चमचे से निकालने चला तो चमचा चूर-चूर हो गया। फिर चाकू से काटा तो चाकू भी टेढ़ा हो गया। ऐसा सर्द देश है वह!" जब वह इस तरह कह रहा था तो सभा में से एक आदमी खड़ा हो कर बोला—'महाशय आप के कहने से ऐसा मालूम होता है कि आप का दिमाग भी जम कर पत्थर हो गया है।

—○—

एक राजा के पास बत्तीस सरदार थे। उस राजा को कोई कष्ट नहीं था। लेकिन वह डरता रहता था, कि यह सरदार कब क्या कर बैठें! एक बार एक ज्ञानी उस के दरबार में आया तो राजा ने अपना डर उसे कह सुनाया। ज्ञानी ने उपदेश दिया—'राजन! डर काहे का! बत्तीस दाँतों के बीच यह जीभ कैसे चलती है! तुम भी उसी तरह रहो।'

भारती

किसी जङ्गल में भारती नाम की एक चिड़िया रहती थी। बचपन से वह परोपकारी स्वभाव की थी। मृत्यु-लोक में जब उसकी आयु पूरी हो गई, तो उसके पुण्य-प्रभाव से देव-दूत विमान लेकर आए और उसको बिठा कर स्वर्ग ले गए।

वहाँ देवताओं ने उसका बड़ा सम्मान किया और पूछा—'क्या चाहिए तुम्हें?' इसका क्या जवाब दिया जाए? भारती को कुछ भी नहीं सूझ पड़ा।

कुछ दिनों तक स्वर्ग में रहने के बाद, भारती देवेन्द्र के पास पहुँची, और बोली—'मुझे यहाँ कुछ भी अच्छा नहीं लगता है! इसलिए मुझे फिर से भूलोक में भेज दीजिए!' देवेन्द्र ने उसे वरदान दिया—'तुम चाहे जो रूप धारण कर सकती हो और जिस लोक में जाना चाहो, जाकर सुख-पूर्वक विहार कर सकती हो!'

तब भारती 'परी' का रूप लेकर भूलोक में उतर आई। पृथ्वी पर उतरते ही, फिर वह उस जङ्गल में चली गई जहाँ वह पहले रहती थी, और उसी जगह पर घर बना कर रहने लगी। इस प्रकार जब उस जङ्गल में रह रही थी तो एक दिन....

भारती को अपने बचपन की एक बात याद आ गई। बचपन में भारती शहर में रहने वाले अपने चाचा के घर गई थी। उस नगर में बहुत-सी सुविधाएँ थीं। अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद थे। इसलिए वहाँ जी न लगने का कोई कारण नहीं था। हमेशा खुशी-खेल में समय बिताया जा सकता था।

अब, जब भारती को वह मीठी बात याद आ गई, तो उसकी बुद्धि भी बदली। वह सोचने लगी—'इस जङ्गल में अकेला कैसे रहा

राज रानी नैयर

जाए, कुछ रुचता नहीं। तो चलूँ—शहर में चाचा के ही घर जाकर रहूँ! वहाँ सब तरह के सुख-आराम रहेंगे; वहीं रह जाऊँगी! फिर इस जङ्गल में आऊँगी ही नहीं! वहाँ, भारती-देवी कहलाने में मुझे गौरव भी होगा!'

ऐसा सोच कर उसने शहर में जाने का निश्चय कर लिया। यह निश्चय होते ही भारती बड़े तड़के उठी, भोजन बना कर खाया-पिया, फिर अच्छे-अच्छे कपड़ों से अपने को खूब सजाया। रास्ते के लिए आवश्यक रुपये-पैसे रख लिए, घर में ताला लगा दिया, चाबी खिड़की के छेद में छिपा दी। फिर पैदल ही शहर की ओर घर से निकल कर चल पड़ी। जैसे ही वह दो कदम आगे बढ़ी कि 'भारती देवी!—भारती देवी!!' पुकारता हुआ एक मृग-छौना उसके सामने आ खड़ा हुआ। वह डर से काँप रहा था। बार-बार मुड़ कर पीछे की ओर देख रहा था!

'क्या है भाई छौना! यों क्यों काँप रहे हो!' भारती ने मृग-छौने से पूछा।

'क्या कहूँ! हमारे जङ्गल में एक शिकारी घुस आया है। वह हाथ में बन्दूक लिए हुए है, और नज़र में पड़ने वाले सभी जीवों को धूल में मिलाता जा रहा है! भारती, ज़रा मुझे अपने घर में छिपने की जगह दोगी?'—यों वह निहोरा करने लगा।

'बहुत अच्छा!' दया से सहज ही पिघल जाने वाली भारती ने छिपी हुई चाबी निकाली, दरवाज़ा खोला और उस मृग-छौने को अन्दर ले आकर कहा—'छौना! मेरा आँगन अनेक तरह के साग-सब्ज़ियों से लहलहा रहा है। फल देने वाले बहुत से पेड़-पौधे भी हैं। तू मज़े से यहाँ रह!'

ऐसा कह कर उसने फिर दरवाज़ा बन्द कर दिया, चाबी खिड़की में छिपा दी और चाचा के यहाँ शहर जाने को तैयार हो गई।

ठीक दो कदम चली होगी फिर कि 'भारती ! भारती !!' की करुण-पुकार सुनाई पड़ी भारती ने सोचा—फिर किसी पर मुसीबत आ पड़ी है !' सोच ही रही थी कि एक बतख सामने से आती हुई दिखाई पड़ी।

'क्या है बतखी ! क्या हुआ है ?'

'क्या कहूँ तुम से, भारती-देवी ! मेरे लोग सरोवर में नहाने आए थे। मैं तैरती चली गई और बुलाने पर भी नहीं लौटी। वे लोग घर लौट गए। मैं अब रास्ता भूल गई हूँ !'

भारती उस बतख को पुचकारने लगी—'बहन, डर नहीं ! अब तू मेरे घर में आ गई है ! मेरे आँगन में एक बड़ी सरसी है। उस में तू मन-मानी जल-क्रीड़ा कर सकती है। मृग-छौना तेरा साथी होगा। जब मैं चाचा के घर से लौटूँगी, तब तुझे घर पहुँचा दूँगी।' यों कह कर उसने चाबी निकाली, दरवाज़ा खोला और अन्दर ले जाकर अपनी सरसी में बतख को डाल दिया। फिर दरवाज़ा बन्द करके चाबी छिपा कर वह चाचा के घर चल पड़ी।

बहुत देर होती जा रही थी। इसलिए भारती ने पग ज़रा बढ़ाए। चार कदम भी नहीं गई थी, कि फिर एक स्वर सुनाई पड़ा—'भारती ! भारती !!' सहसा रुक कर भारती ने पीछे की ओर देखा।

'देखती क्या है ! एक छोटी गिलहरी दौड़ी आ रही है। उसका मुँह सूखा हुआ था। भारती ने दुलार से पूछा—'सखी यों उदास क्यों दीख पड़ती हो ?'

'क्या कहूँ, तुम से बहन ! बारिश के दिनों के लिए ज़रूरी दाना लाकर पेड़ के खोखले में जमा कर लिया था। फिर कुछ और दाने जमा करने की गरज से मैं बाहर गई हुई थी कि इतने में कोई आया और मेरा

जमा किया हुआ आहार चुरा ले गया। इतने दिन की मेहनत बेकार हो गई। यही नहीं; आज खाने के लिए भी एक दाना घर में नहीं है!'

यह सुन कर भारती ने कहा—'सखी! अब उसकी चिन्ता क्यों करती हो? मेरे घर में खाने लायक बहुत से धान के दाने इधर-उधर पड़े हुए हैं। तुम जब तक चाहो मेरे साथ रह सकती हो! मेरे आने तक यह बतख और यह छौना तुम्हारे साथी रहेंगे!' यह कह कर उसने खिड़की से चाबी निकाली, दरवाज़ा खोला और गिलहरी को घर के भीतर ले गई।

भारती ने फिर से दरवाज़ा बन्द किया, चाबी खिड़की से छिपाई और चाचा के घर चली। यह सब करते-धरते साँझ हो आई।

घर से निकल कर उसने एक कदम भी नहीं रखा होगा कि भारती की मति बदली। वह फिर घर में लौट आई। दरवाज़ा खोल कर भीतर गई और गहने-कपड़े सब उतार डाले। साज-श्रृङ्गार मिटा दिए; और आकर आराम कुर्सी पर लेट गई। 'मेरे इस जङ्गली प्रदेश में, मेरे साथी जीव-जन्तु, अनेक प्रकार के कष्ट उठा रहे हैं! फिर मैं इन्हें छोड़ कर दूसरी जगह कैसे जाऊँ? मेरे साथी जब यहाँ तकलीफ़ झेल रहे हैं; तो क्या मुझे वहाँ शहर में कोई सुख मिलेगा? इसलिए मैं अब अपने साथियों के बीच इस जङ्गल में ही रहूँगी। कहीं नहीं जाऊँगी!' भारती ने सोचा।

बचपन में कभी वह शहर देख आई थी। लेकिन फिर देखने की उसकी लालसा पूरी न हो सकी!

रंगीन चित्र-कथा, दूसरा चित्र

उधर गंगू की माँ घर में अत्यन्त आतुरता से बेटे की राह देख रही थी। सोचते ही थोड़ी देर में गंगू ने चौखट पर पैर रखा। वह इस आशा में थी कि गाय बेच कर अँजुली भर रुपए लाएगा। लेकिन देखा कि उसके हाथ में सिर्फ सेम के कुछ दाने हैं। उन दानों को दिखा कर वह उनके बारे में जाने क्या-क्या कहने लगा।

माता को उसकी वह बातें बर्दाश्त न हुईं। फिर उसने उसके हाथ से दाने छीन कर बाहर फेंक दिए और गुस्से से कहने लगी—'अरे यह लड़का, किसी काम का नहीं!'—दूसरे दिन बूढ़ी माँ उठी और देखा कि कुछ दूर पर आँगन में एक नयूतन-पौधा लहलहा रहा है! गौर से देखने से वह रंगीन सेम का पौधा जान पड़ा। वह आकाश को छूने जा रहा था। उसको देख कर बूढ़ी-माँ के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा।

गंगू भी सोकर उठा। तुरंत उस पौधे पर नजर पड़ी। वह खुशी से उमड़ कर उछलने लगा। गंगू जानता था कि यह साधारण पौधा नहीं है, महिमामय पौधा है। इसलिए बूढ़ी-खूसट माँ से बहस-मुबाहसा न करके उसने पौधे की महिमा देखने का निश्चय कर लिया।

गंगू धड़ धड़ करके उस सेम के पौधे पर चढ़ने लगा और आखरी छोर तक पहुँच गया। उस पौधे का आखरी छोर मेघ मंडल को भेद कर ऊपर चला गया था। लेकिन गंगू जरा भी नहीं झिझका और उस पर चढ़ कर खड़ा हो गया। खड़ा हो कर उसने चारों ओर गौर से देखा। दूर पर मेघ-मंडल में एक अद्भुत आलीशान भवन उसको दीख पड़ा। सीधे वह उस भवन में जा पहुँचा और दरवाज़ा खटखटाया।

एक अप्सरा ने दरवाज़ा खोला। 'बच्चे, कौन हो तुम?'—उसने पूछा। 'यह ज्वालामुख राक्षस का भवन है। वह देखते ही तुम्हें निगल जाएगा।'

इतने में कुछ आवाज हुई। अप्सरा ने कहा—'अच्छा! इधर आ जाओ, उसने गंगू का हाथ पकड़ा और कोने में ले जाकर एक पेटी में छिपा दिया।'

टाइप-राइटिंग के चार चित्र

★

चित्र भेजते समय पाठक याद रखें कि वह अपने चित्रों पर, अपना नाम वगैरह कुछ भी न लिखें।
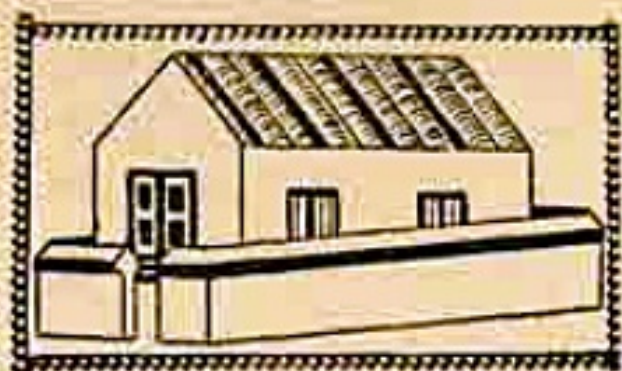
बी. के. पी.

एच. एस. बी. एम
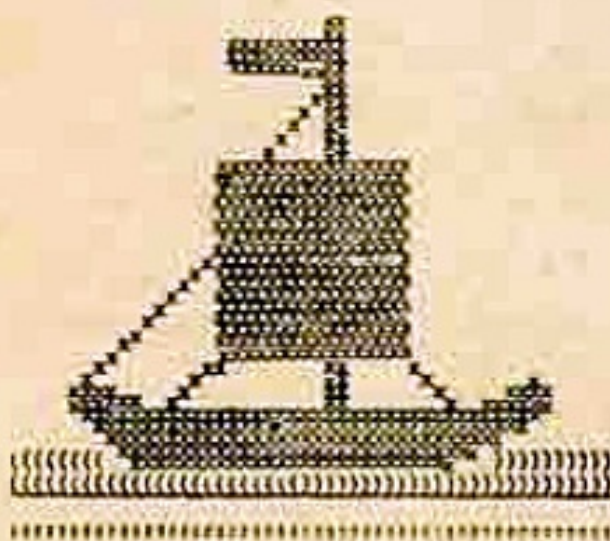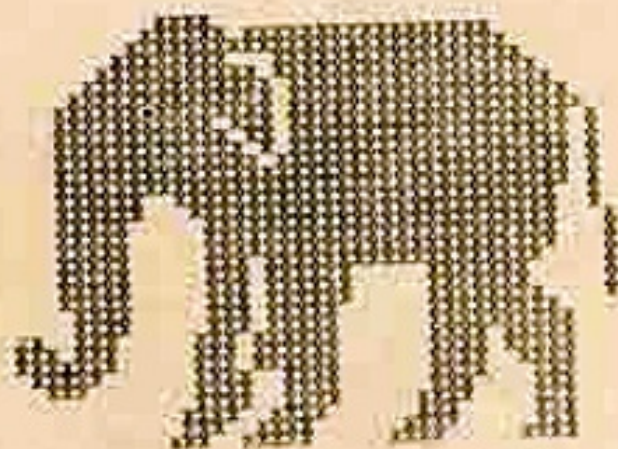
मुबारक

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

दिसम्बर १९५३ :: पारितोषक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें।

ऊपर के फोटो दिसम्बर के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर-संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर १० अक्टूबर के अन्दर ही निम्न-लिखित पते पर भेजनी चाहिए।

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास-२६

नवम्बर - प्रतियोगिता - फल

नवम्बर के फोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषकों को १०) का पुरस्कार मिलेगा।

पहला फोटो : **क्षितिज की ओर** दूसरा फोटो : **गगन की ओर**

प्रेषक :- ठाकुर जयराज सिंह, ठाकुर रघुबीर सिंह, B. A. LL. B. जबलपुर.

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ प्रेषक के नाम-सहित नवम्बर के चन्दामामा में प्रकाशित होंगी। उक्त अंक के प्रकाशित होते ही पुरस्कार की रकम भेज दी जाएगी।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him for Chandamama Publications, Madras 26. Controlling Editor: SRI CHAKRAPANI.

Photo by A. L. Syed
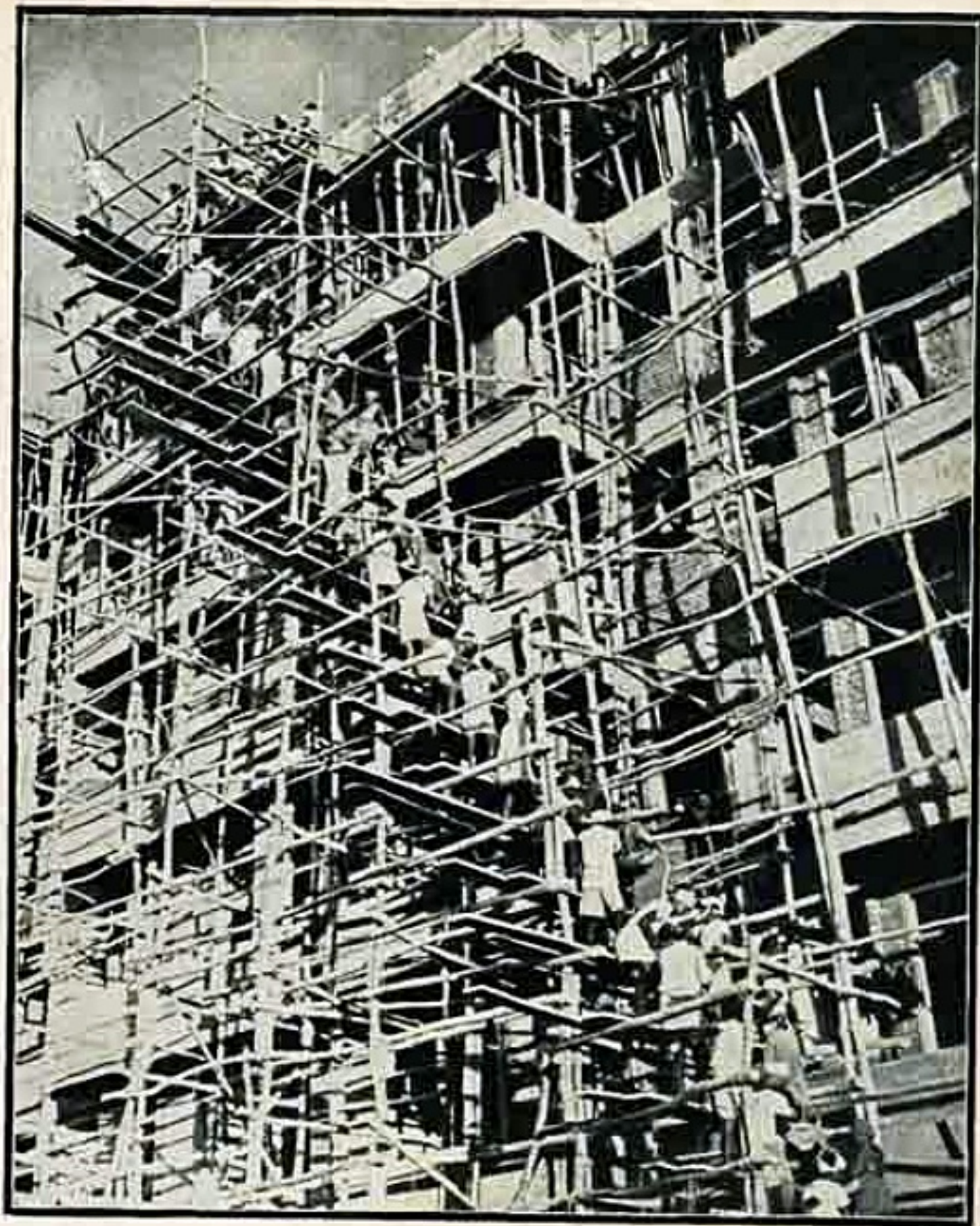
पुरस्कृत परिचयोक्ति

धन-प्रतीक

प्रेषक
सीताराम गाडोदिया–चन्दौसी

CHANDAMAMA (Hindi) OCTOBER 1953 Regd. No. M. 5452

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र–२